॥ धरोहर ॥

स्मारिका

(सन् 2006)



श्री काशी संगीत समाज

वाराणसी

मेरा नाम जानकीबाई इलाहाबाद

कैलाश गौतम

जानकीबाई के बारे में लिखना, खर-पतवार, घास-फूस और तरह-तरह के कबाड़ से भरे अँधेरे कमरे में सुई टटोलने के बराबर है। लेकिन यह दुस्साहस मैं जानबूझ कर कर रहा हूँ–इसलिए कि मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि इसी 'अँधेरे कमरे' में सुई भी है। संतों, फकीरों, महात्माओं और महान कलाकारों के साथ ऐसा अकसर हुआ है कि वे पैदा कहीं हुए, और मरे कहीं। यही बात जानकीबाई के साथ भी लागू होती है। दुनिया जानकीबाई को इलाहाबाद के नाम से जानती है और इस बात का एलान खुद जानकीबाई अपने गानों के रेकॉर्ड के जरिये करती है–'मेरा नाम जानकीबाई इलाहाबाद।' जानकीबाई के रेकॉर्डों की सटीक पहचान यही है। गाने के आखिर में जानकीबाई अपनी छाप जरूर छोड़ती हैं–'मेरा नाम जानकीबाई इलाहाबाद।'


साजिंदों के साथ महफिल में जानकी बाई (छप्पनछुरी)

लेकिन इस पहचान के बनने में बड़ा समय लगा है। इसके पीछे एक इतिहास है–रहस्य, रोमांच और करुणा भरा इतिहास। जानकीबाई तवायफ थीं और अपने जमाने की मशहूर तवायफ थीं–पूरे हिंदुस्तान की अकेली तवायफ। जानकीबाई अगर साधारण तवायफ होतीं तो न जाने कितने शहर बदलतीं, कितने कोठे बदलतीं और कितने मर्द बदलतीं; और न तो उनका इतिहास होता, न कोई नाम लेवा। लेकिन जानकीबाई ने अपना इतिहास खुद बनाया। मैं उसी इतिहास के सहारे आप तक पहुँच रहा हूँ।

रास्ता इधर से है

जानकीबाई का जन्म उन्नीसवीं सदी के मध्य में बनारस शहर के 'बरना का पुल' मुहल्ले में एक अहीर परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम था शिवबालक राम और माँ का नाम था मानकी। उसकी एक सौतेली माँ भी थीं। सौतेली माँ ब्राह्मण जाति की थीं और उनका नाम था लक्ष्मी दुबाइन। जानकी के घर में दूध और मिठाई का कारोबार होता था। शिवबालक पहलवानी करता था। आसपास के जिलों के दंगलों में बड़े शौक से जाता था।

लक्ष्मी से शिवबालक की मुलाकात ऐसे ही एक मेले में हुई। शिवबालक गया था दंगल में, कुश्ती लड़ने। शिवरात्रि का दिन था। गंगा किनारे बहुत बड़ा मेला लगा था। शिवबालक जहाँ ठहरा था वहाँ एक मंदिर था और आसपास सन्नाटा था। दो-एक गाँव थे, लेकिन काफी दूर थे। शाम के धुँधलके में आसपास के इलाकों से उठते हुए होली और बेलवरिया के बोल सुनाई पड़ते थे। एक तो फागुन की अलमस्त गुलाबी शाम, दूसरे कसी-कसी और भरी-भरी देह, तीसरे केसरिया बूटी का भरपूर नशा। शिवबालक बहुत दूर गंगा किनारे चलता चला गया। सहसा छपाक की आवाज हुई और शिवबालक का नशा हिरन हो गया। वह समझ गया कि ऊँचे कगार से ज़ानबूझ कर कोई गंगा में कूदा है। नदी किनारे का रहवैया शिवबालक सर्र से मछली हो गया और उस डूबने वाले को निकाल कर बाहर ले आया। वह एक औरत थी। उसके आँचल में दो-चार घंटे



पहले पैदा हुआ मरा बच्चा बँधा था। बहुत देर तक वह औरत केवल गहरी-गहरी साँसे लेती रही। जब पूरी तरह से संयत हुई तो पूछने पर अपना नाम बताया–लक्ष्मी। कुँवारी थी। नदी में कूद कर आत्महत्या करने का कारण था–आँचल में बँधी मरी अवैध संतान।



मिस जानकी बाई (छप्पनछुरी)

अनाथ लड़की या सौत?

शिवबालक लक्ष्मी को साथ लेकर रात में ही मेले से निकल पड़ा। बहुत दिनों तक वह अपनी पहली पत्नी मानकी से झूठ बोलता रहा कि लक्ष्मी अनाथ है। घर का पता-ठिकाना मालूम होते ही इसे पहुँचा दूँगा। लेकिन भीतर-भीतर वह लक्ष्मी पर लट्टू था। लक्ष्मी सचमुच बहुत सुंदर थी। अंततः उसके रंग-रूप की विजय हुई और वह मानकी की सौत बन गयी। तब जानकी सात-आठ साल की थीं वह लक्ष्मी को चाची कहती थी। लेकिन जब शिवबालक लक्ष्मी की शिकायत पर मानकी को डंडे से पीटता तो जानकी छटपटा कर रह जाती। वह कहती कुछ नहीं, लेकिन लक्ष्मी के प्रति आक्रोश से भर उठती। और कई-कई दिन वह अपनी चाची से बोलती नहीं थी। धीरे-धीरे इसी तरह दिन बीतने लगे। दुकान पर कभी शिवबालक बैठता, कभी मानकी बैठती और जब मानकी नहीं खाली रहती तो लक्ष्मी ही बैठ जाती।

एक दिन लक्ष्मी दुकान पर बैठी थी। थाने का एक दीवान आया दूध पीने। लक्ष्मी ने उसे देखा और उसने देखा लक्ष्मी को। लक्ष्मी ने कहा, "रघुनंदन!" और रघुनंदन ने कहा, "लक्ष्मी, तुम जिंदा हो?" लक्ष्मी भीतर चली गयी। जानकी से बोली, "जो रे जनकिया एक ठे सिपाही हौ दूध दे दे। हमार जिउ नाहीं नीक है।" जनकिया ने दूध दे दिया और रघुनंदन दूध पी कर चला गया। धीरे-धीरे शिवबालक की दुकान पर रघुनंदन का आना-जाना बढ़ता ही गया। लक्ष्मी जो पहले बहुत खामोश और उदास रहा करती थी, हँसने, मुस्कराने और बोलने-बतियाने लगी। रघुनंदन आता तो घंटों दोनों आपस में हँसते-बोलते। शिवबालक को इसकी कोई जानकारी नहीं थी। लेकिन जानकी से यह प्रेम-व्यापार छिपा नहीं रहा। कभी-कभी लक्ष्मी गंगा नहाने, कभी विश्वनाथ मंदिर जाने के बहाने घर से निकलने भी लगी थी। जानकी ने यह भी देखा कि चाची जब घर से बाहर निकलती है तो बहुत दूर तक पैदल जाती है और आगे वही सिपाही रघुनंदन खड़ा रहता है।

एक दिन घर में कोई नहीं था, केवल लक्ष्मी थी। रघुनंदन आ गया–बचपन का प्यार हिलोरें लेने लगा। वे दोनों एक-दूसरे में इतने खो गये कि बाहर से किवाड़ बंद करना ही भूल गये। इसी बीच जानकी बाहर से धड़धड़ाती चली आयी। उसने सब कुछ देखा और कुछ भी न देखने का नाटक किया। लेकिन लक्ष्मी की आँखों में वह किरकिरी की तरह गड़ने लगी। कुछ ही देर में लक्ष्मी बहाना बना कर बाहर चली गयी और रघुनंदन दुबे घूम-फिर कर आया और जानकी से बातचीत करने लगा। जानकी किसी काम से आँगन में गयी तो वह भी गया और बर्फी काटने वाली छुरी से लगा जानकी को मारने। मिनटों में ही जानकी लहुलुहान हो गयी। पूरा आँगन लाल-ही-लाल दिखाई देने लगा। जब वह बेहोश हो गयी तब रघुनंदन ने धीरे से पीछे के दरवाजे की कुंडी खोली और बाहर निकल गया। रघुनंदन उधर गया, इधर लक्ष्मी आयी। लक्ष्मी ने रोने और चिल्लाने का बहुत सफल नाटक किया। काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी। जानकी अस्पताल ले जायी गयी। उसे कुल छप्पन घाव लगे थे। लगभग सात-आठ महीने अस्पताल में रहने के बाद वह घर वापस आयी।

रघुनंदन दुबे पर मुकदमा चला। उसे काला पानी की सजा हुई। जानकी जब अस्पताल में थी, तभी लक्ष्मी एक



दिन चुपके से सारे गहने और रुपये-पैसे लेकर हमेशा-हमेशा के लिए घर से गायब हो गयी। शिवबालक के बुरे दिन आ गये। एक तो लक्ष्मी का जाना उसे साल गया, दूसरे वह रुपये-पैसे से भी कमजोर हो गया। सुलह के लिए पुलिस का दबाव अलग पड़ रहा था। वह भी एक दिन घर से भाग गया।

माँ-बेटी दोनों का सौदा

अब रह गयीं घर में केवल माँ-बेटी। मानकी और जानकी। एक जून की रोटी भी मुहाल हो गयी। कुछ दिनों तक उधार और कर्ज से काम चलता रहा। मानकी की एक परिचित थी–पार्वती भाटिन। पार्वती चेतगंज में रहती थी। लेकिन थी वह चालू और बाजारू। मानकी को इसकी जानकारी नहीं थी। वह पार्वती के कहने में आ गयी। पार्वती ने मानकी का मकान और एक भैंस दो सौ रुपये में गिरवी रखवा दिया और अपने साथ दोनों को ले कर पार्वती इलाहाबाद आ गयी। इलाहाबाद में पार्वती की एक दूर की मौसी रहती थी और नाचने-गाने का पेशा करती थी। पार्वती उसके यहाँ कई बार आयी-गयी थी। इस बार भी वहीं ठहरी। मानकी और जानकी को पता नहीं चला, लेकिन भीतर-ही-भीतर दोनों माँ-बेटी का सौदा हो गया। पार्वती बिना मानकी और जानकी से मिले चली गयी। उसके जाने के बाद मानकी को असलियत मालूम हुई। वह कई दिनों तक फूट-फूट कर रोती रही और हार कर एक दिन परिस्थितियों से समझौता कर ही लिया।

तब मानकी लगभग तीस के आसपास की रही होगी। रंग साँवला था, लेकिन पानीदार था। आँखें बड़ी-बड़ी थीं और अण्डाकार थीं। छरहरी देह, औसत कद। दुकान चलाने के लिए इतना सामान बहुत था। कोठे पर पैसा कमाने तन-देह से, कला से नहीं। लेकिन मानकी अपना भविष्य जानती थी। इसलिए उसे चिंता थी जानकी की। जानकी जब कभी गुनगुनाती तो उसकी गुनगुनाहट में मानकी को अपना और जानकी दोनों का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता। मानकी ने उस्तादों से बातचीत की और जानकी की तालीम शुरू हो गयी। जानकी चार-पाँच घंटे रोज रियाज करती। रियाज रंग पकड़ता गया और जानकी मशहूर होती गयी।

इसी बीच एक अनहोनी अपने-आप घट गयी। पार्वती की मौसी एक कलवार के साथ बैठ गयी और कोठा छोड़ कर अलग रहने लगी। अब कोठे की मालकिन हो गयी मानकी। एक तरह से मानकी के हक में अच्छा ही हुआ। साल बीतते-बीतते छप्पन छुरी का कोठा मशहूर हो गया। जैसे नर्सरी से निकाला गया पौधा रोपाई के बाद जड़ पकड़ लेता है और दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करने लगता है, उसी तरह जानकी भी इलाहाबाद में आ कर जानकीबाई उर्फ छप्पन छुरी के नाम से मशहूर हो गयी। गायकी की सुगंध नदी, पहाड़ों, जंगलों, गाँवों, कस्बों, और शहरों को पार करने लगी। केवल इलाहाबाद के रईसों में ही नहीं, बल्कि दूर-दूर के और दूसरे शहरों जैसे बनारस, लखनऊ, कलकत्ता, दिल्ली, बंबई में भी जानकीबाई चर्चा का विषय बन गयी। पाँच रुपये से मुजरे की शुरुआत करने वाली जानकीबाई हजार-हजार, बारह-बारह सौ रुपये तक के मुजरे करने लगी। मन्नीलाल अनंदीलाल गोटेवाले के यहाँ से हर महीने नया शरारा, नया गरारा और नया पेशवाज बनने लगा। उस जमाने में एक-एक पेशवाज हजार-पंद्रह सौ रुपये में तैयार होता था।

लखनऊ के उस्ताद हस्सू खाँ गाना सिखाते थे। उनका पूरा खर्च जानकीबाई उठाती थी। उस्ताद हस्सू खाँ साहब पर जानकीबाई का लगभग दो हजार रुपया प्रति महीना खर्च बैठता था। सारंगी पर कभी मखदूम बख्श होते थे, कभी घसीटे और तबले पर रहीमुद्दीन मियाँ जान और रामलाल भट्ट रहते थे। जानकीबाई बाहर के कार्यक्रमों में ज्यादातर रामलाल और घसीटे को ही अपने साथ ले जाती। भग्गू मियाँ, बद्दू मियाँ दो बावर्ची थे। जल्लू मियाँ कार्यक्रमों से संबंधित लिखा-पढ़ी और कचहरी का सारा काम देखते थे। जानकीबाई को पढ़ाने के लिए मास्टर आते थे। अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी तीनों के अलग-अलग मास्टर थे। जानकीबाई के पास अपनी एक बग्घी भी थी। सईस थे रमजानी। फर्शी पीने का बहुत शौक था। एक आदमी केवल फर्शी पर तंबाकू भरने और तैयार करने के लिए रखा गया था। मकानों का भी बहुत शौक था। लगभग पंद्रह-बीस मकान जानकीबाई के थे। इनमें कुछ तो जानकीबाई ने रईसों से शादी-ब्याह के मौके पर इनाम के रूप में ले लिये

थे। कुछ मकान जरूरतमंद लोगों ने खुद जानकीबाई के पास रेहन रख दिये थे, जिन्हें आगे चल कर जानकीबाई ने खरीद लिया था। घंटाघर के पास जहाँ आज रेलवे का टिकटघर है, उसके बगल का मकान जानकीबाई का था। उसी सड़क पर और आगे बढ़ने पर, गढ़ी सराय की तरफ चलने पर जानकीबाई के और मकान थे। जानकीबाई ने रामबाग रेलवे स्टेशन के ठीक सामने विद्यामंदिर स्कूल के बगल में एक धर्मशाला भी बनवायी थी, जो कुछ दबंग लोगों की महती कृपा से मकानों के रूप में बदल गयी। उस जमाने में प्लेग की बीमारी अकसर फैलती रहती थी, और तब शहर से लोग बाहर की ओर भागने लगते थे। कुछ इस कारण से भी और कुछ इलाहाबाद शहर की गर्मी के कारण से भी, जानकीबाई ने एक मकान बड़े हौसले से गंगा किनारे रसूलाबाद में बनवाया था। गर्मी के दिनों में जानकीबाई अकसर रसूलाबाद वाले मकान में चली जाती थी। वह मकान आज भी अपने अतीत को संजोये हुए है।

कंठ का करिश्मा

जानकीबाई बहुत ही बदसूरत औरत थी। रंग काला था। चेहरे पर घाव-ही-घाव थे। गालों पर, माथे पर और गले में लगे चाकू के घाव साफ-साफ दिखाई देते थे। चेहरे पर कोई आकर्षण नहीं था। लेकिन कंठ में जादू था। सचमुच वह कोकिलकंठी थी और भैरवी गाने में तो वह बेजोड़ थीं। आधी रात के बाद उनकी आवाज में और मिठास घुल जाती थी। वैसे तो जानकीबाई की महफिल शहर के खास-खास रईसों के यहाँ जैसे लाला बिसेसरदास की बगिया में, गंगादास चौक में, रानीमंडी की कोठी पर, बाबू राधेश्याम कलवार की हवेली में, दारागंज की पक्की कोठी में और कभी बड़े-बड़े अफसरों के यहाँ होती ही रहती थी, लेकिन साल में जन्माष्टमी और होली के मौके पर कोतवाली और पुलिस लाइन में विशेष रूप से होती थी। जानकीबाई जब पुलिस लाइन में गाती थीं तो रात के सन्नाटे में उनकी आवाज रसूलाबाद तक यानी लगभग डेढ़-दो मील दूर तक सुनाई पड़ती थी। अतरसुइया की चौदह हजारी महफिल इतिहास बन गयी। जिस चबूतरे पर बैठ कर जानकीबाई गा रही थी, वह पूरा चबूतरा चाँदी के रुपयों से पट गया था। कुल चौदह हजार सत्तर रुपये इनाम में उतरे थे।

सबसे बड़ा मुकाबला सन 1911 में हुआ था। जॉर्ज पंचम आये हुए थे। और इलाहाबाद शहर में पहली बार बहुत बड़े पैमाने पर जॉर्ज टाउन में, जहाँ आज माघमेला गोदाम बना हुआ है, नुमाइश लगी थी। कम-से-कम पच्चीस रुपये का और ज्यादा-से-ज्यादा नब्बे रुपये का टिकट था। भरद्वाज आश्रम के सामने का बटलर मार्केट भी उसी समय का बना हुआ है। उस नुमाइश में कलकत्ते की मशहूर तवायफ गौहर जान भी आयी हुई थी। गौहर जान के मुकाबले जल्दी कोई गाने को तैयार नहीं होता था। लेकिन जानकीबाई ने बड़े हौसले से बीड़ा उठाया था और जब रात के बारह बजे के बाद गाना शुरू किया तो गौहर जान पसीने-पसीने हो उठी। और सुबह तक सिर्फ जानकीबाई ही गाती रही। गौहर जान हवा हो गयी।

इससे जानकीबाई की और धूम मच गयी। उसी दिन जानकीबाई को प्रथम श्रेणी के नागरिक का दर्जा भी दिया गया। रिवॉल्वर और बंदूक का लाइसेंस भी दिया गया। जानकीबाई के सम्मान को देखते हुए अंग्रेज सरकार की ओर से दो सुरक्षा सिपाही तैनात कर दिये गये। वे बराबर जानकीबाई के घर के सामने पहरा दिया करते थे। शहर के सरकारी कार्यक्रमों में जानकीबाई अपनी पालकी से जाती थी और पालकी के आगे-पीछे सुरक्षा सैनिक चलते थे।

एक बार जानकीबाई गयी थी रीवाँ के राजघराने में गाने। शादी का मौका था। बारात कहीं बाहर से आ रही थी। जानकीबाई को लड़की वाले की तरफ से अनुबंधित किया गया था। जिस समय जानकीबाई पेशवाज पहन रही थी, राजघराने के किसी विशिष्ट व्यक्ति ने उसे देख लिया था। जानकीबाई का रंग-रूप देखते ही वे आपे से बाहर हो गये। तुरंत मुंशी जी बुलाये गये जिन्होंने जानकीबाई के गाने की तारीफ की थी और सट्टा किया था। मुंशी जी के हाथ-पाँव फूल गये। तुरंत दूसरी तवायफ ले आने का उन्हें आदेश दिया गया। मुंशी जी जानकीबाई के आगे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। जानकीबाई ने मुंशी जी को ढाढ़स बँधाया



और एक तरकीब भी सुझायी। तरकीब मुंशी जी को पसंद आ गयी। उन्होंने तुरंत जा कर महाराज से कहा, "हुजूर, एक और बहुत मशहूर तवायफ आयी हुई हैं, लेकिन उसकी एक शर्त है–वह परदे में गायेगी।" महाराज ने शर्त स्वीकार कर ली। जब परदे से जानकीबाई ने गाना शुरू किया तो बाहर बैठी महफिल झूमने लगी। महाराज ने एक हजार एक अशर्फियाँ और मोतियों की माला इनाम में दी। जब महफिल खत्म हुई तो महाराज ने उस परदेवाली तवायफ को देखने की इच्छा जाहिर की। मुंशी जी ने बहुत डरते-डरते उनकी बात जानकीबाई तक पहुँचायी। जानकीबाई तुरंत महाराज के सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी। राजा साहब पानी-पानी हो गये और जानकीबाई से अपनी भूल के लिए क्षमा माँगने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने जानकीबाई से रीवाँ में बसने का आग्रह भी किया। लेकिन जानकीबाई ने उनका वह प्रस्ताव मुस्करा कर ठुकरा दिया।

जानकीबाई ज्यादातर राजघरानों में ही गाने जाती थीं। दिल्ली, पंजाब, राजस्थान और मध्यप्रदेश की रियासतों से कार्यक्रम करके जब लौटतीं तो उनके पास चालीस, पचास और साठ हजार के आसपास रकम होती थी। जानकीबाई को गुस्सा बहुत आता था। एक बार राधेश्याम बाबू के यहाँ महफिल बैठी थी। उस दिन एक नौसिखिया चिकारेवाला भी संगत के लिए आया हुआ था। भूल से या नासमझी से उसने गलत सुर लगा दिया और जैसे ही गलत सुर लगा कि जानकीबाई ने तड़ाक से भरपूर उलटा झापड़ उसके मुँह पर मारा। सारी महफिल सन्न रह गयी। जानकीबाई ने चिकारा खुद ले कर सुर निकाल कर उसे सुनाया और मुस्करा कर कहा, "बेटा! इसे माँ का झापड़ समझना। जब-जब गलत सुर लगाओगे इसी तरह झापड़ खाओगे।" जानकीबाई कभी इलाहाबाद की हार नहीं देखना चाहती थी। ऐसा अकसर होता था कि और दूसरी तवायफें जब बाहर की किसी तवायफ के मुकाबले कमजोर पड़ने लगतीं तो भागी-भागी जानकीबाई के पास आतीं और पैर पकड़ लेतीं। पहले तो जानकीबाई उन्हें खूब जी भर गालियाँ सुनातीं और ताने मारती, लेकिन इलाहाबाद की नाक रखने के लिए उनके साथ जातीं जरूर।

हिंदुस्तान का सबसे पहला रेकॉर्ड

हिंदुस्तान में सबसे पहला गाने का रेकॉर्ड एच.एम.वी. कंपनी ने जानकीबाई का बनाया। इससे पहले किसी भी गानेवाले का रेकॉर्ड नहीं बना था। जानकीबाई के रेकॉर्ड के बाद कालू कौवाल, प्यारा साहब और गौहर जान वगैरह के रेकॉर्ड बनने शुरू हुए। पहली बार जब जानकीबाई का रेकॉर्ड जानसनगंज, इलाहाबाद की एक दुकान पर बजना शुरू हुआ तो सारा शहर जैसे टूट पड़ा था और पूरे शहर में यह खबर आग की तरह फैल गयी। हर आदमी सुनने के लिए दौड़ पड़ा था। पूरी सड़क जाम हो गयी थी। कोतवाली से पुलिस बुलायी गयी थी भीड़ हटाने के लिए और उसी दिन शहर के बहुत से रईसों के यहाँ जानकीबाई के गानों के बने रेकॉर्ड और रेकॉर्ड बजानेवाली मशीन खरीदी गयी। जहाँ बजता वहीं भीड़। रेकॉर्ड भी तरह-तरह के निकले–गुलनारों में राधा प्यारी बसे, मतवार नैनवा जुलुम करें, श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन। यह भजन जानकीबाई को बहुत पसंद था। वह इसे अकसर गुनगुनाया करती थीं। जानकीबाई के कुछ और रेकॉर्ड जो उस जमाने में बहुत धूम मचाये हुए थे, वे हैं–

मजा ले ले रसिया नई झुलनी का।
तोहीं बाटू जग में जवान साँवर गोरिया।
दस गुंडा आगे चलैं दस गुंडा पछवाँ
बिचवाँ में चलैलू उतान साँवर गोरिया।।

✸ ✸ ✸

तोरी बोली सुनै कोतवाल तूती बोलै ले
ऊँचे चउतरा बइठैं समधी जी
करैं बहिनियन क मोल, तूती बोलै ले
बड़की क माँगे ऊ पांच रुपइया
छोटकी क मोल अनमोल, तूती बोलै ले
समधी देखो बांका निराला है रे, समधी देखो
वो तो समधी हाथी चढ़त है
लोग कहैं हाथीवाला है रे.........।

✸ ✸ ✸

मैं ना लड़ी थी, सइयां निकल गये
इस नगरी के दस दरवाजे



'मेरा नाम जानकीबाई इल्ला-बाद' उर्फ कथा पुराने ग्रामोफ़ोन रैकर्डों की

विजय वर्मा
भूतपूर्व रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया

सन् 1907 में एक घटना हुई। इंग्लैण्ड की ग्रामोफ़ोन कम्पनी ने रैकर्ड बनाने का एक कारखाना, डमडम, कलकत्ता में स्थापित किया। इस प्रकार वर्ष 1982 में भारत का ग्रामोफ़ोन उद्योग अपने जीवन के पिचहत्तर वर्ष पूरे कर रहा है।

भारत में रैकर्ड 1907 में बनने शुरू हुए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इससे पहले हम तवेनुमा रैकर्डों या उनके पूर्ववर्ती बेलननुमा रैकर्ड्स से अपरिचित या महरूम थे। राजस्थान में कानोता के अमरसिंह की 21 जनवरी, 1902 की डायरी में यह प्रविष्टि मिलती है– 'जावरा के नवाब साहब ने अपना फ़ोनोग्राफ़ सुनने के लिए बुला भेजा था। यह सचमुच बड़ा अच्छा है। मैं भी अपने लिए ऐसा ही मंगवाने की सोचता हूँ।' यह फ़ोनोग्राफ़ सन् 1877 में एडीसन ने ईज़ाद किया था। इसके लिए बेलन या चूड़ियाँ उनकी कम्पनी सन् 1929 तक बनाती रही।

लेकिन इससे बहुत पहले 1888 में एमिल वर्लिनर अपना डिस्क या तश्तरी वाला ग्रामोफ़ोन बना चुके थे। 1898 में हैनोवर, जर्मनी में रैकर्ड बनाने का प्रसिद्ध कारखाना लगा और उसी वर्ष इंग्लैण्ड में ग्रामोफ़ोन कम्पनी बनी। 1903 में बर्लिन में ओडियन कम्पनी बनी। इससे पहले लन्दन और न्यूयार्क में कोलंबिया कम्पनी की स्थापना हो चुकी थी।

तो, 1907 तक और उसके बाद भी भारतीय संगीत के रैकर्ड जरमनी और इंग्लैण्ड में तैयार करवाकर मँगवाये जाते रहे। ये रैकर्ड 7 इन्च, 10 इन्च और 12 इन्च व्यास के होते थे। उस जमाने के बहुत से रैकर्ड सिर्फ एक ओर ध्वनिमुद्रित किये हुए और 'प्रैस्ड इन बर्लिन, जरमनी' या 'रिप्रोड्यूस्ड इन हैनोवर' जैसी इबारतों से युक्त मिलते हैं। टॉकिंग मशीन और इण्डियन रैकर्ड कम्पनी, बम्बई और बम्बई की ही वल्लभदास लछमीदास एण्ड कम्पनी अपने रैकर्ड 'बेका-ग्राण्ड' लेबल के अन्तर्गत बनवाकर बेचती थी। इन रेकर्डों में एक बगुला रैकर्ड सुन रहा है। बम्बई के टी॰एस॰ रामचन्द्र एण्ड ब्रदर्स 'रामाग्राफ डिस्क रैकर्ड' नाम से जर्मनी में रैकर्ड बनवाते रहे जिनमें पश्चिमी वाद्ययन्त्र पर कोयल बैठी हुई दिखाई जाती थी। मोर की आकृति से युक्त 'सिंगर रैकर्ड' भी जर्मनी में बने थे। इसी तरह पार्ला फ़ोन रैकर्ड इंग्लैण्ड में बने।

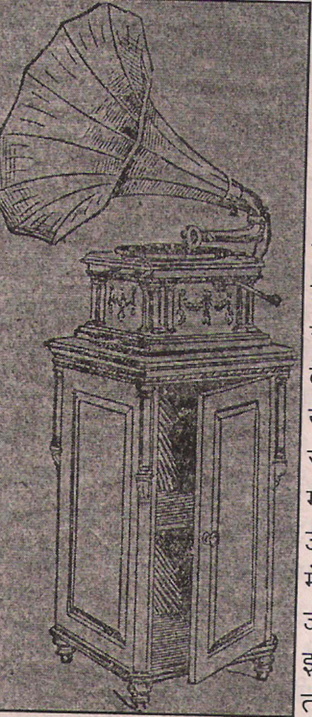
उधर ग्रामोफ़ोन कम्पनी भी, पहले, रैकर्ड पर पंख पकड़े बैठे फ़रिश्ते, और फिर, मालिक की आवाज सुनते कुत्ते के ट्रेड मार्कों से युक्त, ग्रामोफ़ोन कंसर्ट और ग्रामोफ़ोन मोनर्क रैकर्ड पहले विदेशों में बनवाकर और फिर भारत में ही बनाकर बेचती रही। (जानकी बाई के एक रैकर्ड में एक ओर फ़रिश्ता ट्रेडमार्क और दूसरी ओर कुत्ता ट्रेड मार्क है।) 1920 के आसपास तक एक और प्रचलित लेबल ज़ीनोफ़ोन का था जिसके अन्तर्गत पहले इंग्लैण्ड में और फिर भारत में बने रैकर्ड बाज़ार में आए। जिस ट्विन ट्रेडमार्क के अन्तर्गत बाद में भारत में ढेरों रैकर्ड बने वह भी ज़ोनोफ़ोन के इंग्लैण्ड में बने एक रैकर्ड में उपलब्ध है। कोलम्बिया कम्पनी ने भी भारत में अपनी शाखा खोली। बाद में इंग्लैण्ड में ग्रामोफ़ोन और कोलम्बिया कम्पनियाँ एक हो गईं और विश्व-प्रसिद्ध ई॰एम॰आई॰ ग्रुप का जन्म हुआ।



1907 से 1939 तक भारत में रैकर्ड बनाने का कारखाना तो वही डमडम वाला रहा लेकिन कम्पनियाँ कई खुलीं और बन्द हुईं जिन्होंने अपने ट्रेडमार्कों के तहत रैकर्ड बनवाये और बेचे। भाँति-भाँति के रंगबिरंगे लेबल वाले रैकर्ड मिलते हैं। 'सैनोला' का मोर, 'शंहशाही' के नवाब, 'चारमीनार' का हैदराबाद वाला स्मारक, 'न्यू एक्सैलसियर' का घोड़ा, 'विक्टोरिया फ़ोन' का हाथी, 'फ़िल्म-ओ-फ़ोन' का बन्दर, 'कोहिनूर' का ग्लोब, 'ब्रौडकास्ट' का सागर और उगता सूरज–आज भी पुराने रैकर्डों के ढेरों में से झाँकते हुए यदा-कदा मिल जाते हैं। कुछ फ़िल्म कम्पनियों ने भी अपने लेबलों से अथवा अपने लेबलों को एच.एम.वी. से संपृक्त करके रैकर्ड बनवाये। 1930 से 1940 के दशक में स्थापित हुई जो कम्पनियाँ अपेक्षाकृत अच्छी चलीं, वे थीं लाहौर की 'ज़ीनोफ़ोन', जोधपुर की 'मारवाड़ी' और कलकत्ते की 'मैगाफ़ोन' और 'हिन्दुस्तान'। ज़ीनोफ़ोन रैकर्डों पर उड़ता हुआ फ़रिश्ता–एक हाथ में ग्रामोफ़ोन, दूसरे में एक रैकर्ड, मारवाड़ी पर झपटता हुआ बाघ, मैगाफ़ोन पर हरिण और उगता सूरज और हिन्दुस्तान पर बाँसुरी बजाता हुआ बालक शोभा पाते थे।





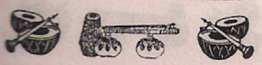


लेकिन इन सभी कम्पनियों को डमडम वालों के नाज़-नखरे उठाने पड़ते थे और कलाकारों को भी उक्त कम्पनी की शर्तों में बँधना पड़ता था। विदेशी कम्पनी के इस एकाधिकार को तोड़ने का पहला सफल और साहसिक प्रयास 1939 में स्थापित नेशनल रैकर्ड्स मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी के रूप में सामने आया। इस कम्पनी ने 'यंग इण्डिया' और तिरंगे झण्डे वाले लेबल के साथ अपने स्वयं के कारखाने में रैकर्ड बनाये। बाद में यह कम्पनी भी बन्द हो गई और पॉलिडौर कम्पनी के भारत में आने तक फिर ई.एम.आई. की हिज मास्टर्स वायस का एकाधिकार रहा। लेकिन इस बीच पुराने 78 चक्कर फ़ी मिनट की चाल वाले रैकर्डों का जमाना लद चुका था। स्टीरियो ध्वनि और धीमी चाल वाले–45 या $33^{1}/_{3}$ चक्कर प्रति मिनट, बारीक कटान (माइक्रोयूव) और देर तक बजने वाले (लौंगप्ले) रैकर्डों की बाढ़ आ चुकी थी। तकनीक और गुण–दोनों दृष्टियों से संगीत, उसके प्रस्तुतीकरण और उसके ध्वनिमुद्रण में भारी बदलाव आ चुका था।

पश्चिम में माइक्रोयूब रैकर्डिंग 1948 में प्रारम्भ हुई। हालांकि इसके बहुत बाद तक भी 78 आर.पी.एम. रैकर्ड बनते रहे, हम सन् 1948 को एक प्रतीकात्मक अन्त मान सकते हैं, पुराने रैकर्डों के युग का।

आइये, कुछ चर्चा हो जाय लगभग पाँच दशकों तक चले इस युग के पुराने रैकर्डों की।

पुराने ग्रामोफ़ोन रैकर्डों का एक मनोरंजक पक्ष वे उद्घोषणाएँ हैं जो इन रैकर्डों के आरम्भ अथवा अन्त में दर्ज की हुई हैं। कलकत्ते की गौहर जान बड़े ठसके से बोलती है–माई नेम इज़ गौहर जान'। केदार के रैकर्ड में वे यह भी बताती हैं कि यह एक नई बन्दिश है–'दिस इज़ न्यू सौंग'। भैरवी ठुमरी 'रसीली मतवालियों ने' में वे उसके रचयिता भय्या गणपतराव का उल्लेख करती हैं। ठुमरी खमाज के रैकर्ड में यह घोषणा है–'माई नेम इज़ गौहर जान। यह ठुमरी........ लिखी है और मैंने इसको गाया है।' आगरे वाली मलका जान तो अपना पता भी दर्ज कराती है '27, मौस्क लेन, कैलकटा।' 'इमदाद खाँ सितारिये', और 'इनायत खाँ सितारिये', (विलायत खाँ के बाप) ये



उद्घोषणाएँ एक महान् परम्परा की तीन पीढ़ियों का बोध कराती हैं।

इलाहाबाद वाली जानकी बाई एक कदम आगे जाती हैं। जब वे बड़ी अदा से 'मेरा नाम जानकी बाई इल्ला-बाद' कहती हैं तो यह 'बाद' भी सुर में बन्धा होता है और उनके साथ वाले उस्ताद जी हारमोनियम पर भी वही सुर देते हैं। भाई छैला भी बड़े लोकप्रिय गायक थे और उनका 'भाई छैला, पटियाले वाला' भी गीत का एक हिस्सा मालूम पड़ता था।

मौजुद्दीन खाँ के कुछ रैकर्डों के अन्त में आवाज आती है–"वाह, मौजुद्दीन वाह!" यानी नाम भी दर्ज हो गया, दाद भी मिल गई। एकाध रैकर्ड में मुख्य कलाकार के बाद संगतिकार भी फुर्ती से अपना नाम बोल गया है।



ग्रामोफोन पकड़कर खड़ी हुई गौहरज़ान

सन् 1934 का एक रैकर्ड है 'गवय्यों का जमघटा' जिसमें बाक़ायदा उद्घोषणाओं के साथ मिस दुलारी, प्यारु कव्वाल, जोहरा अम्बालेवाली, इन्दुबाला, जमीर खाँ और अँगूरवाला को पेश किया गया है। 1934 के ही ऐसे ही दूसरे रैकर्ड में कमला झरिया, फखेआलम कव्वाल, ऊषारानी और यूसफ़ एफ़ेन्डी उपस्थित हैं।

लोकसंगीत की विशुद्धता बनाये रखने के मामले में रैकर्डिंग कम्पनियाँ जितनी उदासीन आज हैं उतनी ही पहले भी थीं। राजस्थानी मांड के साथ 'बमचक-बमचक-बमचक' वाला आरकेस्ट्रा सुनकर ख़ासी तकलीफ़ होती है। फिर भी, इन पुराने रैकर्डों की बदौलत ही क्षेत्रीय और लोकसंगीत के कुछ अलभ्य नमूने आज भी सुरक्षित हैं। कुलैथ की सरदार बेग़म ने मेवात की बंगडी शैली के गीत बहुत सुन्दर गाये हैं। रामगढ़ शेखावाटी के सल्लानाई 'खिलाड़ी' के चिड़ावी शैली के ख्यालों के गीत 1920 के आसपास के होने चाहियें। इनमें पीलू काफ़ी और परज कालिंगडा जैसी रागों का उपयोग महत्त्वपूर्ण हैं। जोनोफ़ोन के लेबल के साथ ही, गोपाल वल्लभ और जानकी का गाया हुआ 'नाग जी' भी 1920 के आसपास आया। जोधपुर की मारवाड़ी रिकार्ड-कम्पनी 1934 में आरम्भ हुई और अब तक चल रही है। जस्सी, घापी, बाबूड़ी, कल्लू, खुशाली, लछ्छू, सिंकर लाल, रमजान खाँ, वजीर खाँ, इमामुद्दीन और अल्लाजिलाई जैसे अनेक प्रतिष्ठित पेशेवर लोकगायक-गायिकाओं की कला के नमूने इन रैकर्डों में सुरक्षित हैं। "ये कोठेवालियाँ" में अमृतलाल जी नागर ने गौनहारिनों की चर्चा भी की है। बनारस की गौनहारिनों की गाई कजरियों का एक रैकर्ड मिलता है। इसी तरह और सांस्कृतिक अँचलों की गायिकियों के नमूने जैसे अभंग, लावणी और गर्वा गीत भी इन रैकर्डों में उपलब्ध हैं। राजस्थान की मांड, राजस्थान के बाहर के भी अनेक कलाकारों की गाई-बजाई हुई मिलती हैं। पारसी थियेटर के नमूने भी इन रैकर्डों में मिलते हैं। सोरावजी आर॰ ढोढी, राधा, उमर, फ़ीरोज़, फ़ातमा, मास्टर छगन, असग़र अली इत्यादि के गाये, 'भूल भुलय्या', 'चतरा बकावली', 'लैला', 'तिलिस्मात सुलैमां', 'असीर-ए-हिर्स', 'सौभाग्य सुन्दरी' इत्यादि नाटकों के गीतों के रैकर्ड बने थे। पारसी रंगमंच की शैली में ही अनेक कम्पनियों ने अनेक नाटक रैकर्ड किये जो अक्सर कई-कई भागों में होते थे। इनमें से कुछ ये हैं–'सत्यवान सावित्री' (कोलम्बिया ड्रामैटिक पार्टी), 'सुहाग की रात', अन्धी दुनिया', 'बिल्वमंगल', 'कृष्णावतार', 'यहूदी की लड़की',



'महाभारत' और 'शीरी फ़रहाद' (ट्विन ड्रामा पार्टी)। मराठी नाट्य संगीत के भी रैकर्ड बने थे जिनकी बदौलत हम बाल गन्धर्व, छोटा गन्धर्व और दीनानाथ मंगेशकर जैसे कलाकारों को सुन सकते हैं।

कव्वाली और भजन आज की तरह तब भी बहुत लोकप्रिय थे। कल्लू कव्वाल, कल्लन खाँ, अज़ीम प्रेम रागी इत्यादि के सैकड़ों रैकर्ड बने थे। शरर साहब के भजनों, पं. भरतलाल के 'कृष्ण चरित्र', गोस्वामी नारायण और नाथूलाल के रामायण पाठ के रैकर्ड अनेक संग्रहों में थे।

जहाँ तक शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध है, सभी बड़े गवय्यों की कद्र तत्कालीन रैकर्डिंग कम्पनियों ने की हो ऐसा नहीं लगता। यह भी सम्भव है कि कुछ बड़े कलाकारों ने रैकर्ड बनवाने से इनकार कर दिया हो। कारण जो भी रहा हो, भय्या गणपत राव, अमान अली खाँ, रजब अली खाँ, गणेश रामचन्द्र बहरेबुआ, राजा भय्या पूछवाले, अल्लादिया खाँ, भास्कर राव बखले, बालकृष्ण बुआ इच्छलकरंजीकर प्रभृति गायकों के रैकर्ड अब तक मेरे देखने में नहीं आये हैं। हद्दू खाँ के सुपुत्र रहमत खाँ के रैकर्ड जरूर 1920 में बने थे लेकिन जानने वालों के अनुसार वे उनकी प्रतिभा के अच्छे नमूने नहीं बन पाये। इसके विपरीत रामकृष्ण बुआवझे के कई रैकर्ड हैं। अल्लादिया खाँ साहब की शिष्या केसरबाई केरकर और हैदर खाँ की शिष्या, बड़ौदा की लक्ष्मीबाई जाघव के रैकर्डों के लिए भी हम रैकर्डिंग कम्पनियों के शुक्रगुजार हैं। अब्दुल करीम खाँ, फैयाज खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ और ओंकारनाथ ठाकुर के रैकर्डों के बारे में तो खैर सभी जानते हैं। कुमार गन्धर्व का दुर्गा और भैरव का रैकर्ड तब का है जब वे उम्र से भी 'कुमार' थे। मल्लिकार्जुन मंसूर का तोड़ी और दुर्गा वाला रैकर्ड उनके उत्कर्ष का अच्छा पूर्वाभास कराता है। अमीर खाँ के पुराने रैकर्ड उनके क्रमशः अमीर खाँ बनने की कहानी कहते हैं। अजमत हुसैन खाँ, लताफ़त हुसैन खाँ और विलायत हुसैन खाँ के अनेक रैकर्ड हैं। उम्मेद अली, आशिक अली, मौहम्मद हुसैन, बिब्बे खाँ, मिस्टर खैराती, सुन्दरा बाई, सरदार बाई, मोघूबाई, चन्दा कारवारिन, मौजुद्दीन खाँ और प्यारा साहब के रैकर्ड भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मनहर बर्वे, नारायण राव व्यास और गंगूबाई हंगल के रैकर्डों से तो सभी परिचित होंगे। पुरानी बन्दिशों और अब अप्रचलित हो चली रागों की दृष्टि से भी शास्त्रीय संगीत के इन पुराने रैकर्डों का एक विशेष स्थान है।

वाद्य-संगीत के क्षेत्र में इमदाद खाँ, इनायत खाँ के अतिरिक्त बुन्दू खाँ के सारंगीवादन व पटियाला के अब्दुल अजीज खाँ के विचित्र वीणा-वादन के रैकर्ड महत्त्वपूर्ण हैं। पुराने सितारियों में मौहम्मद खाँ, शफ़ीकुल्ला, रहमत खाँ, फ़जल हुसैन और बरकतउल्ला के रैकर्ड उल्लेखनीय हैं। सखावत हुसैन खाँ के सरोद-वादन के रैकर्ड यह दर्शाते हैं कि इस वाद्य के वादन की पद्धति किस प्रकार विकसित हुई है। अलाउद्दीन खाँ साहब और हाफ़िज अली खाँ साहब के रैकर्ड भी मिलते हैं। बी.आर. देवधर के निर्देशन में, 1933 के आसपास बना, जोगिया और सोहनी में वाद्यवृन्दों का रैकर्ड पारम्परिक वाद्यवृन्द की पद्धति का परिचायक है। हबीबुद्दीन और अहमदजान के तबला और चामू मिश्रा, हामिद हुसैन और झिरेखाँ के सारंगीवादन के रैकर्ड भी संग्रहणीय हैं।

एक रोचक तथ्य यह है कि स्वतन्त्र हारमोनियम वादन के बहुत से रैकर्ड बने थे। भास्कर बुआ बखले के शिष्य, गोविन्दराव टेम्बे के हारमोनियम वादन के अनेक रैकर्ड हैं। उनका 'तर्ज़ कर्नाटकी' का रैकर्ड 1927 का है। अमृतलाल दवे और बशीर खाँ के रैकर्ड भी हैं। अनेक संगीतज्ञों के नाम के साथ 'हारमोनियम मास्टर' की उपाधि जुड़ी हुई मिलती है।

पुराने ग्रामोफ़ोन रैकर्डों का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वे उस समय की कोठे और मुजरे की गायिकी को सुनने और समझने के शायद एकमात्र उपलब्ध स्रोत हैं। वह जमाना ही 'बाईयों' का था। इनमें से बहुतों का तो गाने-बजाने से बस नाममात्र का ही वास्ता रहा होगा लेकिन, दूसरी ओर, इस वर्ग में अनेक प्रशिक्षित और पारंगत गायिकाएँ भी थीं जिनके रैकर्ड एक अमूल्य निधि और संगीत के इतिहास के बेजोड़ दस्तावेज़ हैं। कलकत्ते की गौहर जान, आगरे की मलका, चिलबिले की मलका, आगरे और अम्बाले वाली–जोहरायें, शोलापुर की महबूब जान,



बनारस की काशीबाई, सिद्धेश्वरी और रसूलन, इलाहाबाद की जानकी बाई, लखनऊ की दुलारी, पानीपत की अमीर जान, दिल्ली की कालीजान, फैजाबाद की अख्तरी बाई (बेगम अख़्तर) नर्गिस की माँ जद्दनबाई और मुश्तरी बाई ऐसी ही गायिकायें थीं। बनारस की विद्याधरी का रैकर्ड तो मैं अब तक नहीं पा सका हूँ लेकिन बड़ी मोती बाई का एक रैकर्ड मेरे देखने में आया है।

पेशेवर गायिकाओं से अलग दिखने के लिए, बहुत सी महिला कलाकार तब अपने नाम के आगे 'अमेच्योर' लिखवाती थीं जबकि आज ऐसा सम्बोधन अपरिपक्वता का सूचक माना जायेगा। दूसरी ओर, गौहर के एक पुराने रैकर्ड पर 'फ़र्स्ट डांसिंग गर्ल' यह विशेषण दर्ज है अर्थात् चोटी की नाचने-गाने वाली। नाम के आगे 'फ़िल्म स्टार' जुड़ना भी इज्जत की बात समझी जाती थी। कुछ नामों के आगे 'रेडियो स्टार' भी लिखा मिलता है। 'मेल सांग', 'फ़ीमेल सांग', 'ग़ज़ल कव्वाली' जैसे विवरण आज विचित्र लगते हैं लेकिन तब धड़ल्ले से चलते थे। इमदाद खाँ के एक रैकर्ड में सितार को 'इण्डियन गिटार' कहा गया है। कई रैकर्डों में 'वाहवाह' और दाद देने की आवाजें हैं।

असल में जैसे आज है वैसे ही उस समय भी सब प्रकार के रैकर्ड बनते थे और उनमें उस समय का जीवन और रुचियाँ और घटनायें प्रतिबिम्बित होते थे। यदि 'एम्पायर डे' के रैकर्ड में 'गॉड सेव द् किंग' मौजूद है तो दिसम्बर, 1946 में कंस्टिटुएण्ट असैम्बली में दिया गया नेहरूजी का भाषण भी उपलब्ध है। एक ओर जी.एन. जोशी की गाई, बाँसवाडा 'दरबार' की प्रशस्तियाँ हैं तो दूसरी ओर देशवन्दना और गांधी-महिमा के भी रैकर्ड हैं। कमलदास गुप्ता के निर्देशन में मातृसेवक-सेविका दल ने 'वन्दे मातरम्' और 'मेरी माता के सिर पर ताज रहे' जैसे गीत गाये। मिस दुलारी का गाया, राधेश्याम कथावाचक का गीत–'नाथ फिर डूबते भारत को बचाने आओ' बहुतों को आज भी याद होगा। ओंकारनाथ ठाकुर के मुल्तानी में निबद्ध 'वन्दे मातरम्', फ़िल्म 'बन्धन' के 'चल चलरे नौजवान', फ़िल्म 'क़िस्मत' के 'दूर हटो ए दुनिया वालों' को कौन भूल सकता है? मास्टर वसन्त ने गाया था–'गांधी तू आज हिन्द की इक शान बन गया।' 1938 में बनी 'ब्रह्मचारी' फ़िल्म में गीत था–'जहाँ चर्खा चले मतवाला, वहाँ होगा सदा बोलबाला।' गीत के साथ 'महात्मा गांधी की जय' और 'आज हमारे देव मन्दिरों में नहीं, चर्खे में विद्यमान हैं', जैसे उद्बोधन थे। 'निराला हिन्दुस्तान' में गीत था–'भारत नया बसेगा..... सारी चीज़ें यहीं बनेंगी, दौलत सारी यहीं रहेगी'....... इत्यादि।

दूसरी ओर, 'धीरज धरो बालमा, छोटी से बड़ी हो जाइबे' (हीराबाई), 'प्यारे-प्यारे जोबनवा पे जान है निसार' (पद्मारानी), 'पटवारी के लड़के ने जुलुम किया' और 'सैयाँ तोरी गोदी में गैंदा बन जाऊँगी' (मिस दुलारी), 'काहे तोड़ो जोबन निम्बुआ, काचे ना तोड़ो' (जवाहर बाई) जैसे गीतों की भी कमी नहीं है। लोकगीतों के नाम पर 'जीजा जी बोलो तो सही, साली तो सिरहाने खड़ी' जैसी ग़लाज़त भी बाज़ार में फेंकी गई थी। पशु-पक्षियों की बोलियों के रैकर्ड हैं तो मिस रैशल, बिट्ठलदास पाँचोटिया, मास्टर मोहन और मुराद अली के कॉमिक भी हैं। मुराद अली के एक रैकर्ड में एक ओर 'बिराण्डी' में मौजूद गुणों का बखान है तो दूसरी ओर नशे-पत्ते पर लानत भेजी गई है। मास्टर हादी, 'अगर हर घर में ऐसे इश्क का प्रचार हो जाए' के साथ 'लटक जाये न जाने कितने मर्द फाँसी पर अगर एक औरत भी थानेदार हो जाए' की तुक मिलाते हैं। मौहम्मद हुसैन 'अरे वाह मेरी धोबन, तेरे नखरे गरम मसाला' और 'तुझे बुलाये मुकन्दीलाल लाला' गाते हैं तो साथ में वेश्यागमन की निस्सारता भी बखानते हैं–

रण्डी नहीं किसी की यार
ओ घरबार लुटाने वाले।
इनका झूठा है सब प्यार
इनका खोटा है व्यवहार।
जब तक पैसा तब तक रण्डी
जब तक जिन्स है तब तक मण्डी
वो तो खा-खा हुई मुस्टण्डी..... वगैरह।

जिस सामाजिक चेतना के दर्शन बाद में साहिर के नग्मों में होते हैं, वही फ़िल्म 'बाला जीवन' में मारुतिराव पहलवान के गाये इस गीत में भी मौजूद मिलती है–



'खुली सड़कों के बिस्तर पर
खाली पेट सोते हैं।
हमारे खूने दिल से हर कोई
'होली मनाता है।'

पुराने रैकर्डों में उपलब्ध पुराने फ़िल्मी गीतों की चर्चा तो एक अलग, विशद विषय बनाती है। लेकिन यहाँ उमराज़िया बेगम और वहीदन बाई जैसी विस्मृत की जा चुकी गायिकाओं को याद कर लेने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। वहीदन बाई का फिल्म 'कामरेड्स' में गाया 'मोपे डार गए सारी रंग की गगर' एक क्लैसिक था और इसकी नोटेशन 'संगीत' (हाथरस) में 1938 में छपी थी। नलिनी जयवन्त, शोभना समर्थ, अशोक कुमार, लीला चिटणिस, मोतीलाल, प्रेम अदीब, देविका रानी, स्नेहप्रभा प्रधान, माया बनर्जी इत्यादि को भी अब इन रैकर्डों में ही सुना जा सकता है। इन्हीं रैकर्डों में यदि सहगल के 'देवदास' का अमर गीत 'बालम आय बसो मोरे मन में' है तो इन्हीं में मास्टर धूलिया द्वारा फ़िल्म 'एशियाई सितारा' में गाई गई इस गीत की पैरोडी भी उपलब्ध है–'भय्या, आन फँसे अब वन में'। अगर लता मंगेशकर 'लाजो' नाम से 'बाबरा' फ़िल्म में गा रही हैं तो 'धर्मवीर' में 'आओ आओ, कदम बढ़ाओ, प्रेमनगर के वासी'–इन गीतों के साथ, अँग्रेजी में संसार के सभी प्रेमियों का आवाहन करने वाला अपने ढंग का एकमात्र प्रयोग भी इन्हीं रैकर्डों की बदौलत हम तक आ सका है।

और प्रसंगवश थोड़ी चर्चा उस समय के ग्रामोफ़ोनों और रैकर्डों के मूल्यों की। आज एक लौंग प्लेयिंग रैकर्ड 48 रुपये का पड़ता है। जून, 1939 के 'संगीत' में स्विस 'ग्रामोफ़ोन' माडलों–'डबल स्प्रिग वाले–एक बार चाबी देने से दोनों तरफ का रैकर्ड बज सकता है। 10 इंच व 12 इंच दोनों के रैकर्ड बजते हैं' का मूल्य 25 रुपये से 50 रुपये तक विज्ञापित है। ट्विन रैकर्ड था एक रुपये साढ़े चार आने का, 'कुत्ता मार्का' दो रुपया चार आने का और जापानी ग्रामोफ़ोन तो मात्र 20 रुपये में मय 5 रैकर्डों और 200 सुइयों के आता था। और अप्रैल, 1937 में छपा यह विज्ञापन का विज्ञापन्, चुटकले का चुटकला–

'मुर्दे जिन्दा हो गये।'

ग्रामोटैक्स न. 1 : पुराने से पुराने रैकर्डों की आवाज नये के मानिन्द है मूल्य–

ग्रामोटैक्स न. 2 : टूटे-फूटे चटके रैकर्डों को जोड़ देता है मूल्य–

पायरो डेण्ट : पॉयरिया के मरीजों के लिए अकसीर

तो साहब, यह है पुराने रैकर्डों की अनन्त गाथा के कुछ पहलू। मेरी और मेरे पहले की पीढ़ी की ज़िन्दगियों का तो, खैर, वे हिस्सा थे। मेरे एक मित्र के संग्रह में बेगम अख्तर का एक रैकर्ड है जिस पर दर्ज है कि किस प्रकार उनके दिवंगत पितामह ने अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व इस रैकर्ड को अन्तिम बार सुना था। लेकिन शायद नई पीढ़ी भी, जिसने 'स्टीरियो' और 'क्वाड्रो' और 'लौंग प्ले', 'माइक्रोग्रूव' और 'कम्प्यूट्राइज़्ड म्यूज़िक' की दुनिया को ही जाना और जिया है, इन पुराने कच्चे सकोरों में भरे शर्बत का स्वाद ले सके, उनके रोमान्स और उनके महत्त्व से दो-चार हो सके और मेरे जैसे शैदाइयों की दीवानगी का राज़ पा सके जो तमाम 'घिस्सघिस्स' और 'खट खटाक' के बावजूद, रेशों से सनी-लिपटी नारियल की गिरी सरीखे इन पुराने रैकर्डों के मर्म की तलाश में रहते हैं।

अज्ञान और लापरवाही के कारण अनेक अलभ्य रैकर्ड समाप्त हो चुके हैं और हो रहे हैं। इसको रोकने के लिए इनमें रुचि रखने वालों का परस्पर सहयोग करना जरूरी है।

लंदन में ग्रामोफोन कंपनी का जन्म अप्रैल 1898 में हुआ एवं पहला ग्रामोफोन रिकार्ड नं. 1000 डॉ. हरनाम दास का ''रामायण'' निर्गत हुआ। E 1006 - 13027, E 1007 - 14026 शशिमुखी और फेनी वाला के रिकार्ड प्रथम बार 7" इंच में हिन्दुस्तानी संगीत के निर्गत हुए।
–संपादक





बनारसी महफिल



स्व. रायकृष्ण दास

किसी न किसी व्यक्ति के बारे में आपने अवश्य सुना होगा–वह महफिली आदमी है। अब यह मुहावरा भर रह गया है। एक समय था कि महफिल एक जीती जागती चीज–एक संस्था थी। देखते-देखते यह सब अन्तर्धान हो गया–एक स्वप्नलोक सा।

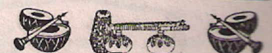
मैंने महफिलों का जो रूप देखा वह 19वीं शती की देन थी। बनारस उत्तर भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था, अवध की बादशाहत का एक अभूतपूर्व प्रान्त। काशी की गली-गली में मस्ती छाई थी, हर कोई दस-बीस भजन गा लेता, चार छः राग-रागनियों के सुर लगा लेता, (लोकप्रिय राग रागिनी थे कालिंगड़ा, परज, आसावरी, भैरवी, इमन, भूपाली, तिलंग, विहाग, छायानट, खम्माच, पीलू, काफी, भीमपलासी, देस, तिलक कामोद) दस-बीस शेर कह लेता। संस्कृत और बृज भाषा के छन्द तो बात-बात में उठ आते। सबेरे उठते ही स्नानार्थियों के भजन कान में पड़ते, शहनाई के सुरीले स्वर, पानी भरनेवालियों और चक्की पीसनेवालियों के मधुर गीत गूँजने लगते। वल्लभ संप्रदाय के मन्दिरों में हवेली संगीत (कीर्तन) धूम से उठ कर छा जाता। गायक-गायिकाओं के अतिरिक्त राजा-रईसों, पंडित-वैद्यों-महन्तों आदि में गायन-वादन के धुरन्धर आचार्य थे। सुनने वाले रसिकों की संख्या अपार थी। तब थी महफिल।



प्रसिद्ध गायिका विद्याधरी बाई, काशी

यक्ष नगर जैसी उस संस्कृति को क्या हो गया? राजा-रईसों में अंग्रेजी शिक्षा का सतही प्रभाव पड़ा। गाना-बजाना विलासिता का अंग समझा जाने लगा। अंग्रेजी विक्टोरियाई संस्कृति के प्रभाव में आये शुद्धतावादी-आन्दोलन, पहले आर्य समाज के, फिर गान्धीवाद के प्रभाव में आये। एक कृत्रिम सुधारवादी आन्दोलन प्रचलित हो गया था। इस प्रभाव में महफिल की परम्परा समाप्त हो गयी। सर्वोपरि आया आज का 'संभ्रांत वर्ग' जो आपाधापी के सिवा कुछ जानता ही नहीं। शायद शक्ति और प्रदर्शन के सिवा ऐसे वातावरण में झूठी पश्चिमी लहर आयी। उसमें महफिल का स्थान क्या?

वस्तुतः महफिल ही भारतीय संगीत का सबसे आदर्श स्थान है क्योंकि भारतीय संगीत चेम्बर म्यूजिक है।



उसमें गायक और श्रोता का जैसा परस्पर सामंजस्य होता है, वैसा इन भारी-भरकम सम्मेलनों में कहाँ? फलतः महफिल का यदि अन्त हो गया तो आश्चर्य क्या?

एक ओर तो थी बनारस की रंगीनी। फिर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अनेक राजा नवाब यहाँ नजरबन्द कर रखे थे। उनमें से कुछ तो स्वयं संगीतज्ञ थे, कुछ गहरे मर्मज्ञ। उनके लवाज़मे में एक से एक बढ़कर गुणी-गवैये आये। पूरा समां बन गया। सबके सिरमौर थे–काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह।

इससे यह न समझियेगा कि बनारस का संगीत उन्नीसवीं शती की ही देन है। मैं प्राचीन काल की बात नहीं कहता। वस्तुतः इस क्षेत्र में कत्थक जाति बहुत समय से चली आती है। संगीत की पुरानी धरोहर इस जाति के पास चली आ रही है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध ख्यालिये सदारंग-अदारंग इसी जाति के थे और काशी के निकट जौनपुर नामक स्थान के थे। ये मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के दरबार में सर्वश्रेष्ठ गायक हुए और इन्होंने ख्याल की गायकी को एक नये साँचे में ही ढाल दिया। उनकी रचनाओं पर मुहम्मद शाह रंगीले की भी छाप रहती थी। सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अपनी क्षेत्रीय बोली–भोजपुरी–का प्रयोग न छोड़ा जैसे "भोर कहीं मिलन भइलवा रे।"

पता नहीं ठुमरी शैली कहाँ से चली–यह भी कोई नहीं बता सका कि ठुमरी का शाब्दिक अर्थ क्या है। बुजुर्गों से सुना था कि इसमें स्वर ठुमकते हुए चलते हैं। अतः इसे ठुमरी कहते हैं। यह ख्याल का और रसिकतामय रूप है, कुछ लोक शैली के निकट। इसी शैली में दादरा ताल में गायी जाने वाली चीजें दादरे के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह छह मात्रा का छोटा सा ताल है। अतः आसानी से ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे चलने वाली लय बन जाती है। इसकी ढरक मशहूर है।

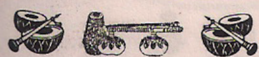
मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि ठुमरी का प्रवर्तन काशी ने किया या लखनऊ ने। पर दोनों निश्चित शैलियाँ थीं। लखनऊ की ठुमरी में स्वरों का लेखा प्रयोग होता–गरिमायुक्त। बनारस में स्वर छिटकते चलते एक रंगीनी और मस्ती के साथ। उनमें एक चुहल होती। बीच-बीच में मीड़, गमक, मुरकी और खटकों का सुंदर प्रयोग होता। सर्वोपरि उसे बोल-बनाव से और रसीली बनाते। बोल बनाने की प्रक्रिया यह है कि गीत के एक छोटे से भाग को (दो-तीन शब्दों को) लेकर उन्हीं स्वरों में फेर-फेर कर रंगत पैदा करते, जिससे चारुता बढ़ जाती। अब इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है। बहुत कम लोग जानते हैं कि बनारस की ठुमरी गायकी के भी कई घराने थे। अब उनमें से एक-दो ही बचे हैं।

दूसरी ओर लखनऊ में कत्थक नृत्यों के आचार्य कालकादीन-बिन्दादीन के समय से ठुमरी-दादरे की एक और शैली चली। यह उनके नृत्य से संबंधित थी। इनके गीत शब्द प्रधान थे। अर्थात एक-एक स्वर पर एक-एक अक्षर था। संभवतः उनके साथ पादन्यास होता था। इन ठुमरियों की चाल भी तेज थी।

महफिलों में ख्याल से ले कर ठुमरी और दादरे तक गाये जाते, कत्थक नृत्य होता। कुछ और भी प्रकार के संगीत होते–टप्पा, चैती, होली, कजरी, पूरबी, भजन, गजल आदि। मियाँ शोरी पंजाब के प्रसिद्ध गायक हुए–संभवतः उन्नीसवीं शती में। इन्होंने एक नयी शैली को जन्म दिया जिसका नाम टप्पा है। यह भी वहाँ की स्थानीय लोक पद्धति का ही शास्त्रीय रूप है। वहाँ के लोक संगीत में स्वरों को आन्दोलित कर लगाते हैं। संभवतः मियाँ शोरी ने इसी को जटिल और तेज मुर्कीभरी तानों में बदल दिया। यह उस काल की अलंकारितापूर्ण रुचि का सबसे सीधा उदाहरण है। इसका गाना बहुत टेढ़ा होता है। इन मुरकियों के एक-एक दाने को बड़ी सफाई से और बड़ी तेजी से दिखलाना पड़ता है। अतः इसमें बड़े अभ्यास की आवश्यकता होती है।

अन्य प्रकारों में से अधिकांश मौसमी चीजें हैं। पूरबी और चैती बनारस के आसपास की लोकधुनों पर आधारित हैं। यद्यपि इन्हें परिष्कृत किया गया है, पर इनमें लोकसंगीत का मर्म छिपा रहता है और तभी तक इनकी सर्थकता रहती है। गायक ने जहाँ उसे आवश्यकता से अधिक शास्त्रीय बनाया कि उसका सबरस गया।

यह तो हुई महफिल की पृष्ठभूमि। अब उसका थोड़ा वर्णन भी दे दूँ। प्राचीन काल से ही मन्दिरों और राजदरबारों



में संगीत एक नैतिक समारोह था। संभ्रांत नागरिकों के यहाँ शादी ब्याह जैसे विशेष समारोहों पर बहुत कुछ राजसी ठाठ का अनुकरण किया जाता, जैसे बारात की शान वही रहती जो किसी बादशाह या नवाब की सवारी की। अतः इन अवसरों पर, जैसे पुत्रजन्म, मुण्डन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत और विवाह पर महफिल का आयोजन किया जाता। जिस व्यक्ति की जितनी सीमा होती उसी के अनुसार महफिल की योजना बनाता।

वस्तुतः उस युग में महफिलों का ऐसा जोर था कि उसमें संगीत, नृत्य आदि की व्यवस्था करने के लिए एक वर्ग ही बन गया था। इन लोगों को टाल कहते थे। ये लोग प्रत्येक गायिका-नर्तकी के विषय में पता रखते थे। संभ्रांत कुल के लोग जब महफिल का आयोजन करते थे तो उन्हें ऐसे एक व्यक्ति की सेवाएँ उपलब्ध करनी होती थीं जो रेट इत्यादि तय करने का काम कर दिया करता और समय पर कलाकारों को उपस्थित कर देता। इसके लिए उसे कुछ दस्तूरी (कमीशन) मिल जाता। प्रायः कलाकारों के रेट स्थिर थे। उसके अनुसार टाल रईसों से बयाना (अग्रिम) ले जाकर दे देते। इसके बाद कलाकार के लिए आवश्यक था कि वह उस महफिल में संगीत एवं नृत्य का प्रदर्शन करते। पर उन दिनों काशी की गायिकाओं की दूर-दूर तक बड़ी धूम थी और उन्हें बाहर से बुलावे आते। ऐसी स्थिति में उन्हें यह छूट मिल जाती कि बयाने की रकम वापस कर वे बाहर जा सकतीं थीं।

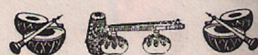
कुछ नयी गायिकाएँ (जिन्हें नौची कहते) सस्ते में उपलब्ध हो जातीं, परन्तु लोग ऐसे पारखी होते कि उनमें भविष्य के विकास को पहचान लेते। ऐसी नौचियों की बड़ी पूछ थी। मैं अपने भतीजे के विवाह के अवसर पर महफिल में बैठा था। बात प्रायः 1925 की है। उस समय प्रसिद्ध गायिका सिद्धेश्वरी देवी नयी-नयी आयी थीं। उनको लोग जानते भी न थे। मैं अपने चचेरे भाई राय छगन जी साहब के बगल में बैठा था। वे बड़े कला पारखी थे। उन्होंने कहा था देखना एक दिन यह बहुत बड़ी गायिका होगी। समय ने इसे सिद्ध कर दिया।

महफिल मकान के आँगन में होती। बरामदे में लोगों के बैठने का स्थान होता। कभी-कभी आँगन के कुछ भाग में भी तख्त लगा कर बैठने का स्थान बना लेते, थोड़ा हिस्सा छोड़ देते जहाँ खड़े होकर गायिकाएँ नृत्य या संगीत का प्रदर्शन करतीं। बीच वाले बरामदे के मध्य में गद्दी और कालीन आदि बिछा कर मसनद लगाते। उस पर उदाहरणार्थ वर बैठाया जाता। यदि कोई अत्यन्त ही विशिष्ट अतिथि होता, जैसे काशिराज या स्थानीय (वल्लभ संप्रदाय के), गोपाल मन्दिर के गोस्वामी स्वरूप (आचार्य जी), बेवर के पार्श्व में बैठते। शेष लोग अपने-अपने निर्धारित स्थान पर बैठाये जाते।

महफिलों की सजावट का बड़ा महत्व होता था। लोग अपने वैभव का भरपूर, परन्तु सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन करते। सारा घर भली-भाँति रंगा-छुआ जाता। दीवारों, खम्भों पर चित्रकारी की जाती। दीवारों पर आदमकद आइने लगाये जाते। चारों ओर मौसमी, विशेष रूप से सुगन्धित फूलों की मालाएँ टाँगी जातीं। सर्वोपरि अनेक प्रकार के झाड़-फानूस लटकाये जाते। इनके प्रकारों की गिनती करने लगूँ तो मुख्य बात से भटक जाऊँगा। ये झाड़ फानूस रंग-बिरंगे होते। उनमें मोमबत्ती लगायी जातीं। इन्हें साफ करने और मोमबत्ती बैठाने के लिए ट्रेंड नौकर होते। जब मोमबत्ती का छड़ बहुत छोटा हो जाता तो उसे बुझा देना पड़ता अन्यथा उसके संपर्क से काँच चिटक जाता। बहुत रात गये ऐसी स्थिति आने लगती तो नौकर लोग बाँस में अंकुश सा एक यंत्र लेकर ऐसी मोमबत्तियों को बुझा देते। कभी-कभी तो लोग सुरीली चिड़ियों के पिंजड़े भी टाँगते।

महफिल के लिए निश्चित प्रकार का निमन्त्रण आवश्यक था। उसके बिना अतिथिगण सम्मिलित न होते। इसके लिए दर्शनाभिलाषी को स्वयं या अपने किसी निकट संबंधी को अतिथि के घर जाकर निमन्त्रित करना होता। न्योता देते समय अच्छे वस्त्र एवं पगड़ी पहननी पड़ती। हर एक जाति या प्रदेश की अलग-अलग प्रकार की पगड़ी हुआ करती थी। इसी प्रकार जब ये लोग महफिल में शरीक होते तो अपने वर्ग की पगड़ी पहन कर ही आते।

पर महफिली जूता सबसे साधारण किस्म का या बहुत पुराना घिसा-पिटा सा होता। इसका कारण यह था कि जूते उतार कर अतिथि अन्दर आँगन में जाते और कुछ उचक्के इस ताक में रहते कि अच्छे जूते चुरा ले जायें। अतः



अक्सर रईस लोग अपना एक नौकर लेकर चलते। रास्ते में अन्धेरा होता। वही नौकर लालटेन से रास्ता दिखाता और फिर बाहर जूतों की रखवाली करता। इस पर एक पुरानी झोंक भी याद आ गयी। महफिल में हँसी-मजाक का तो वातावरण रहता ही था। प्रायः श्लेषपूर्ण मजाक होते, परन्तु कहीं भी अश्लीलता नहीं आती। यहाँ नमूना देखिए :

बनारस में जोड़े के दो अर्थ हैं, जूता या पति-पत्नी। संयोगवश महफिल में जो गायिका (बाई जी) आयीं वे दुबली-पतली और छोटे कद की थीं। उनके छोटे से पैर की जूती संयोगवश उनके पेशबाज़ (नाचने के समय पहनने के वस्त्र) के दामन में उलझ गयी और उनके साथ-साथ महफिल के आँगन तक चली आयी। इसे देख दर्शकों में एक मनचले ने कहा, "बाई जी आपका जोड़ा (जूता या पति) यहाँ तक साथ लगा चला आया।"

बाई जी ने छूटते ही जवाब दिया, "मेरा जोड़ा तो मेरे साथ ही है, हुजूर का जोड़ा तो नौकर के पास है।"

महफिल में लोग जी खोल कर खर्च करते। एक-एक शादी में तीन-तीन, चार-चार महफिलें होतीं। किसी दिन सर्राफ़ की, किसी दिन बिरादरी की, किसी दिन गोपाल मन्दिर के महाराज (गोस्वामी जी) की, किसी दिन महाराज बनारस की। इनमें वे लोग मुख्य अतिथि होते। एक बार एक मित्र के यहाँ बच्चों के कर्णवेध संस्कार में महफिल आदि में बहुत खर्च हो गया। दो-एक दिन बाद पान की दुकान पर खड़े थे, पान वाले ने पूछा, "बाबू साहब इधर आपके यहाँ कोई उत्सव था क्या?" बाबू साहब ने छूटते ही कहा, "एक क्या तीन-तीन उत्सव थे। लड़कों का कनछेदन, मित्रों-रिश्तेदारों का अन्नप्राशन और मेरा मुंडन।"

महफिल का प्रारम्भ भाँड़ों के तमाशे से होता था। ये हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति में होते थे और अजूबा भाँड़ यहाँ बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार लखनऊ में खिलौना भाँड़ का बहुत नाम हुआ। मैंने बचपन में अजूबा की मंडली का तमाशा देखा है। खेद है कि अब यह परम्परा नष्ट-प्राय है। पहले के भाँड़ अपनी शिष्टता, वाक्पटुता, हाजिरजवाबी और संयत परन्तु चुटीले हास्य के लिए प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि मुगल दरबार में भाँड़ों का रोज तमाशा होता। मुहम्मदशाह ने जब नादिरशाह के हमले का समाचार सुना तो वे अपनी फौज लेकर एक दिन लाल किले से निकले पर दूसरे ही दिन वापस लौट आये। कहते हैं भाँड़ों ने अपने तमाशे में कहा, "बादशाह लौट आये, हमारे भाग (भाग्य) आये।"

भाँड़ों का एक और किस्सा याद आता है। किसी नवाब ने इनाम में बड़ा जीर्ण-शीर्ण दुशाला दिया। एक उसमें कुछ अक्षर पढ़ने लगा, दूसरे ने पूछा, "क्या पढ़ते हो?" उसने उत्तर दिया–"इसमें कलमा कढ़ा हुआ है।" दूसरे ने पूछा–"इसमें क्या आश्चर्य है?" पहले ने उत्तर दिया–"पर कलमा अधूरा ही है, इसमें लिखा है ला इला उल इल्लाह।" दूसरे ने पूछा–"नवीं साहब का नाम क्यों नहीं है?" पहले ने तपाक से उत्तर दिया–"अरे भई यह दुशाला तब बना था जब नवीं साहब दुनिया में आये ही न थे।" कैसी करारी चोट थी!

चिराग अली किसी थाने के बड़े जाबिर दरोगा थे। कहीं भाँड़ों के तमाशे में वे बैठे थे। भाँड़ों ने एक तरफ से लोगों के नाम पूछने शुरू किये। जब एक चिराग साहब का नाम लिया तो दूसरा भाँड़ बोला–"उस उल्लू के पट्ठे चिराग को लगाओ सौ जूते। हुजूर का नाम तो आफताब होना चाहिए।"

वस्तुतः ये भाँड़ संगीत और नृत्य में पूरे प्रवीण होते थे और उसी में काव्य और संगीत की लय में ऐसी विलक्षणताएँ पैदा करते कि हास्य का उद्वेग होता। उनमें अद्भुत मौलिकता थी। विशेष रूप से वे तत्कालीन समाज की बड़ी मीठी चुटकी लेते। भाँड़ों का तमाशा महफिल में सबसे पहले इसलिए रखा जाता कि बच्चे उसे देख सकें, क्योंकि बहुत देर होने से वे सो जाते। महफिल का वातावरण "बाई जी" (नर्तकी-गायिका) के आगमन से शुरू होता। वस्तुतः अधिक संभ्रांत व्यक्ति, थोड़ी देर बाद ही पहुँचते। उस समय गानेवालियों का दल होता था जिनमें एक या दो सरंगिया, तबलची (तबलिया) और हारमोनियम बजाने वाले होते थे। महफिल में नर्तकियों को खड़े होकर भाव बताना पड़ता और साथ-साथ नाच के साथ गाना भी पड़ता था। बनारस में कत्थक शैली का ही नृत्य प्रचलित था। इसके दो-तीन प्रमुख केन्द्र थे, जिनमें संभवतः लखनऊ



सर्वश्रेष्ठ था। परन्तु जयपुर, दतिया, बनारस, बिहार के अनेक रजवाड़ों आदि में भी इसके घराने थे। बनारस और लखनऊ की होड़ चला करती। वस्तुतः कत्थक नृत्य के आचार्य संगीत के सभी अंगों के निष्णात होते। उस समय के सरंगिये और तबलिये भी ऐसे बड़े-बड़े आचार्य होते कि गायिकाएँ उन्हीं से शिक्षा लेतीं। यद्यपि सरंगिए, तबलिए महफिल के वातावरण में गायिकाओं को प्रमुख स्थान देते, फिर भी गायिकाएँ अपने प्रदर्शन में बहुत कुछ उन पर आश्रित रहतीं। प्रायः सरंगिए तारों पर ऐसी छेड़-छाड़ करते कि गायिकाओं को प्रेरणा मिलती। कभी-कभी तो गायिकाएँ उसी आधार पर ही गातीं।

आज ये सब परम्पराएँ समाप्त हो गयी हैं। मेरी जानकारी में काशी में अब एक भी ऐसी कोई गायिका नहीं है जो नृत्य के साथ महफिल संगीत प्रस्तुत कर सके, न वैसे साजिन्दे ही रह गये। यद्यपि ये गायिकाएँ प्रचलित रागों में (जैसे भूपाली, ईमन, हम्मीर, मालकौंस, अड़ाना, विहाग आदि में) ख्याल दस-बीस मिनट में सुना देतीं, परन्तु बनारस की महफिल की खास चीज ठुमरी और दादरा थी। ये भाव प्रधान रचनाएँ थीं और इनमें बोल-बनाव का काम बनारस की ही देन है। इसके अंतर्गत एक छोटे से भाव को लेकर उसे भिन्न-भिन्न लयों एवं सुर में अंकित किया जाता, साथ-साथ कत्थक शैली के नृत्य की विभिन्न भंगिमाओं को व्यक्त किया जाता। अब ठुमरी में बोल-बनाव का काम बहुत कम सुनने को मिलता है। इस प्रकार बनारसी संगीत का निजस्व ही समाप्त होता जा रहा है।


प्रसिद्ध गायिका रसूलन बाई, काशी

भारतीय संगीत की एक विशेषता यह है कि श्रोतागण गायक-गायिकाओं से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और विशिष्ट अवसरों पर प्रशंसात्मक शब्द या वाक्य कहते हैं। महफिलों में जानकार लोग आते और किसी अच्छी अभिव्यक्ति पर वाह-वाह की झड़ी लग जाती। कभी-कभी कोई एक सुरुचिपूर्ण पर चुटीला मजाक भी कह बैठता। एक बार प्रसिद्ध काशीबाई भैरवी की ठुमरी गा रही थीं, "जा मैं तोसे नाहीं बोलूं।" मेरे बगल में मेरे प्रिय मित्र श्री रामचन्द्र वर्मा बैठे थे, वे बोल उठे– "जिस का विरह इतना मधुर है उसका प्रेम कितना मधुर होगा।" काशी बाई लजा गयीं और फिर गाने लगीं।

मैंने अभी भैरवी की चर्चा की। इस रागिनी की जैसी मार्मिक अभिव्यक्ति बनारस के गाने-बजाने वालों ने की है, वैसी कहीं नहीं। महफिल के दूसरे दिन सबेरे प्रायः दस बजे से लोग पुनः-पुनः जुटते, उसको "भैरवी की महफिल" कहते। इसमें सबेरे के राग जैसे असावरी, जौनपुरी आदि ख्याल के बाद भैरवी की ठुमरी, दादरा, गजल, भजन आदि



का दौर चलता और इसे मुजरा कहते। इसमें गायिकाएँ बैठ कर गातीं। इस अवसर पर बहुत निकट के ही व्यक्ति आमन्त्रित होते। वातावरण में उस प्रकार की बाजाफ्तगी न रहती, जैसी रात की महफिल में रहती। यद्यपि लोग रात में बहुत देर तक जागे होते, फिर भी इसमें बड़े उत्साह से सम्मिलित होते। भैरवी का यह मुजरा भी चार-पाँच घंटे चल कर तीसरे पहर दो-तीन बजे तक समाप्त होता। उस समय तक तीसरे पहर के राग जैसे पीलू या मुलतानी आदि का समावेश हो जाता।

महफिल में तबले के ठेके का भी एक विशेष महत्व था। बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि बनारसी तबले के कई प्रकार के ठेके होते। आज बहुत कुछ तबले की एक ही शैली रह गयी है और आशंका यह है कि कुछ समय बाद यही एक शैली बच जायेगी। पहले महफिल में तबला बहुत ही सरल (मीठा) होता, जबकि आज तबले का परिष्कार तो बहुत हो गया और ताल एवं गणित के अनुसार वह बहुत परिष्कृत हो गया, परन्तु वह गाने की संगत के सर्वथा अनुपयुक्त है। आज के अनेक तबला वादक, जिस शैली का प्रयोग करते हैं, वह कत्थक नृत्य के लिए उपयुक्त है।

मैंने यहाँ की अनेक प्रसिद्ध गायिकाओं के संगीत को सुना है। परन्तु यह परम्परा बहुत बड़ी है। उनमें से कुछ नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक बार इश्तहार छपवाया था कि वे अपने समय की प्रसिद्ध गायिकाओं के फोटोग्राफ बेचेंगे। अब इनमें से दो-एक ही उपलब्ध हैं। उनके समकालीन काशी के महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह ने भी अपने दरबारी चित्रकारों से स्थानीय गायिकाओं के अनेक चित्र बनवाये थे। प्रायः दस वर्ष पूर्व एक व्यक्ति ने उन्हें तितर-बितर कर दिया। इस प्रकार एक महत्वपूर्ण सामग्री हाथ से निकल गयी। सर जेम्स प्रिसेंप (प्रायः 1830 ई.) ने हींगन नाम की सुप्रसिद्ध गायिका का उल्लेख किया है। उनके बाद नन्हीं जान नामक एक मुस्लिम गायिका का पता चलता है। इनकी एक बहन भी थीं। नन्हीं जान ने बनारस के एक प्रसिद्ध रईस से विवाह कर घर बसा लिया था। (प्रायः 1850 ई.) भारतेन्दु जी ने अंधेर नगरी में गफूरन जान और मुन्ना जान का नाम दिया है। गफूरन जान का फोटोग्राफ भारत कला भवन में है। इसमें ये ताज पहने हुए हैं। भारतेन्दु जी की एक चहेती मुस्लिम वेश्या थी जिसका नाम याद नहीं आ रहा है। भारतेन्दु जी ने उन्हें हिन्दू बनाया और उनका नाम माधवी रखा। पूजा करने के लिए हाथी दाँत के ठाकुर जी दिये। बनारस में उस समय तौकी, बड़ी एवं छोटी मैना भी बहुत प्रसिद्ध हुईं। उस समय एक जानकी बाई भी थीं, जो मिर्जापुर के प्रसिद्ध महन्त जी की रक्षिता थीं। इसीलिए वे महन्त वाली जानकी के नाम से जानी जाती थीं। ऐसे रईसों की उपपत्नियाँ तब तक महफिलों में नहीं जाने पाती थीं, जब तक उनके स्वामी उन्हें छोड़ न दें। भारतेन्दु जी के काल में ही हुस्ना नाम की एक अद्भुत गायिका हुईं, जो अपने रूप नहीं, पर गुण के कारण बहुत ही प्रसिद्ध हुईं। मैंने उन्हें बचपन में देखा है। ये स्वयं कविता करती थीं। भारतेन्दु जी ने इन्हें गीत गोविन्द के पद स्वरबद्ध कराये। यह परम्परा बराबर चलती रही।

हुस्ना बाई रमजना जाति की थीं। यह वेश्याओं की एक जाति है। चूँकि इनकी संतानों के पिता का ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता, इसलिए इन्हें रमजना कहते हैं। इसके अतिरिक्त गायिकाओं की एक और जाति थी, जिसे गन्धर्व कहते हैं। इस वर्ग के लोग दूर-दूर तक फैले हैं और गाँवों में खेती-बारी भी करते हैं।

हुस्नाबाई की तहजीब के बारे में अनेक किस्से मशहूर हैं। रईसजादे उनसे तहजीब सीखने जाते थे। वे अच्छी शायरा भी थीं और उनका दीवान छपा है। बाद में संगीत के प्रति समाज में धीरे-धीरे अरुचि उत्पन्न होने लगी तो कभी-कभी वे फारसी थियेटर के मंच पर भी अभिनय करतीं। पर इससे उनका विशेष लगाव न था। उनके कलाम का नमूना देखिए–

आता यही है जी में कि बीमारे गम बनूँ,
वो पूछने ये आये कि हुस्ना को क्या हुआ?
मेरी वो इल्तिजा की तड़पता हूँ हिज्र में,
जालिम का वो जवाब कि फिर क्या करे कोई।

उसी समय लखनऊ के कालकादीन और बिन्दादीन ने कत्थक को एक नया आयाम दिया और हस्तमुद्राओं का बहुत परिष्कार किया। हुस्नाबाई भी भाव बताने में अद्वितीय



थीं। हुस्ना बड़े शांत स्वभाव की थीं और बाद में धार्मिक विचार की हो गयी थीं। उन्होंने अपनी सारी संपत्ति दान में देकर सिकरौल स्टेशन के सामने एक बड़ी धर्मशाला बनवायी, जो आज भी उनकी कीर्ति उजागर करती है। बचपन में मैंने उनसे भारतेन्दु जी के कितने ही अलभ्य चित्र एवं संस्मरण प्राप्त किये।

थोड़े बाद की गायिकाओं का भी उल्लेख कर दूँ। मेरे बचपन में सरस्वती नाम की एक बहुत बड़ी गायिका हुई, पर वह नृत्य नहीं करती थीं। इसी काल में विद्याधरी नाम की एक अत्यन्त रूपवती गायिका हुईं। वे बहुत हाल तक जीवित थीं। प्रारम्भ में वे महाराज ईश्वरीनारायण सिंह की कृपा पात्र भी थीं। उन पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। परन्तु मेरे व्यक्तिगत विचार से उन्हें काशी की चोटी की गायिका में नहीं रखा जा सकता। विद्याधरी की ही भांजी प्रसिद्ध गायिका सिद्धेश्वरी देवी थीं, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। उन्हें बाद में दिल्ली वालों ने बड़े आदर से बुलाया और वहीं उनका देहान्त हुआ। उनकी कई प्रमुख शिष्याएँ हैं।

सिद्धेश्वरी देवी की ही पीढ़ी में बड़ी मोती बाई, रसूलन बाई (उनकी बहिन बतूलन बाई) काशीबाई, ललिता बाई आदि हुईं। इनके थोड़े ही बाद छोटी मोती बाई, टामी बाई आदि का नाम लिया जा सकता है। इन सभी के संगीत का घराना एक ही था, प्रसिद्ध सियाजी महाराज सरंगिए का घराना। परन्तु इन गायिकाओं ने क्रमशः अपनी निजी शैलियाँ भी विकसित कीं। इनमें रसूलन बाई की एक अनोखी अदा थी। उनकी आवाज में एक अद्‌भुत गहरायी थी और जब वे सीधे सादे ढंग से भी किसी चीज को प्रस्तुत करतीं तो उसमें एक अजीब लोच और दर्द पैदा होता। बनारसी ठुमरी दादरा में उस बेचैनी का ऐसा सुंदर उदाहरण रसूलन बाई में ही मिला। प्रायः 1930 में करनाल वाली भी एक बाई जी थीं। (नाम याद नहीं आता), जो अपनी पल्लेदार आवाज के लिए प्रसिद्ध थीं। इसी काल में जवाहर नाम की एक बड़ी अच्छी गायिका तैयार हुई। प्रसाद जी की दुकान के पास ही उसका कोठा था। लोग इसके रूप नहीं, इसके संगीत पर मुग्ध थे। आजकल बनारस शैली की प्रसिद्ध गायिका गिरिजा देवी हैं।

बनारस के बाहर आकर यहाँ बसने वाली गायिकाओं की कमी न थी। उपर्युक्त में भी नन्हीं जान, बड़ी मोती बाई, रसूलन बाई, बकूलन आदि बनारस के बाहर से ही आकर यहाँ बसी थीं। वस्तुतः बनारस उस समय संगीत का एक प्रमुख केन्द्र था और यहाँ कद्रदानों की भी कमी नहीं थी। संभवतः आजमगढ़ ने एक रूपसी को जन्म दिया। कुछ लोगों का कहना है कि इसके पिता आरमेनी या यूरेशियन थे। यह गौहर जान के नाम से प्रसिद्ध हुईं। इनकी माँ का नाम विक्टोरिया बताया जाता है, जिन्होंने इस्लाम ग्रहण करने पर अपना नाम गौहर जान रख लिया था। गौहर का प्रारम्भिक कार्य-क्षेत्र बनारस ही था। बनारस आने से पूर्व वे गिद्धौर (बिहार) के राजा के पास भी रहीं। बाद में बनारस के राय परिवार के लल्लन जी तथा छगन जी के पास ये बहुत दिनों तक रहीं। राय छगन जी ने इन्हें संगीत की शिक्षा दिलायी। संगीत के क्षेत्र में गौहर का कोई खास महत्व नहीं माना जा सकता। बनारस में रहकर ही गौहरजान का सारे उत्तर भारत में बड़ा नाम हो गया और बड़े-बड़े राजा एवं नवाब उसके प्रशंसक हो गये। पता नहीं क्या कारण हुआ कि राय छगन जी ने इनका साथ छोड़ दिया और वे बंगाल चली गयीं। वहाँ गौहर एक ईरानी युवक के पास रहने लगीं। फिर वे व्यवसाय में नहीं आयीं।

यहाँ मैं चन्द्रकला नाम की एक बाई जी का हाल दे दूँ। (प्रायः 1920-30), ये कोई विशिष्ट गायिका नहीं थीं परंतु इनके सौंदर्य के पाश में बनारस के एक प्रमुख रईस आ गये थे। कुछ समय बाद वे पैसे की कमी में आ गये तब चन्द्रकला कोईझंर (उड़ीसा) के राजा की प्रियपात्रा बन गयीं। उक्त राजा यहीं बस गये और उन्होंने चन्द्रकला के लिए एक बंगला बनवा दिया। कुछ समय बाद उनकी प्रजा उन्हें उड़ीसा से आकर ले गयी। चन्द्रकला को पुनः अपने पुराने प्रेमी की याद आयी। वह अपना सारा वैभव उन पर न्यौछावर करना चाहती थीं, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया।

यहाँ जद्दन बाई का भी उल्लेख कर दूँ। जो हम लोगों के समय ही की थीं। बनारस के एक प्रसिद्ध खत्री परिवार से उनका संबंध था। उनकी कन्या चोटी की सिनेतारिका के रूप में प्रसिद्ध हुईं।



बनारस की ठुमरी गायिकी के प्रसंग में उस्ताद मोइजुद्दीन खां का उल्लेख आवश्यक है। वे आये तो बाहर से थे पर उन्होंने यहाँ की ठुमरी, दादरा गायिकी में एक नया रस पैदा किया। बड़ी मोती बाई आदि प्रमुख गायिकाओं ने उनसे सीखा। फिल्मी गायक सहगल के ठुमरी गायन में भी उनका प्रभाव मिलता है। प्रायः 1925 में वे बनारस छोड़कर कलकत्ता चले गये, पर यहाँ विशेष प्रश्रय न था। उस समय वहाँ प्यारे साहब आदि ठुमरी के प्रसिद्ध गायक थे। कलकत्ता–शान्तिनिकेतन में रहते हुए उनका रवीन्द्र संगीत पर भी प्रभाव पड़ा।

लोग नयी प्रतिभाओं को तुरन्त पहचान लेते। प्रायः 1925 की बात है। उस समय सिद्धेश्वरी देवी का नया-नया नाम सुनायी पड़ा था। मेरे घर में ही एक महफिल थी। उसमें सबसे पहले सुनने का अवसर मिला था। मैं अपने चचेरे भाई राय छगन जी के पास बैठा था। उन्होंने मुझसे कहा– देखना एक दिन यह एक प्रसिद्ध गायिका होगी। समय ने इसे सिद्ध कर दिया। इसी प्रकार रसूलन बाई के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी बहिन बतूलनबाई के साथ, बहुत कम उम्र में सहसराम की ओर से बनारस आयीं। यहाँ के उस्तादों ने तुरन्त पहचान लिया कि यह दो बहिनें उच्च गायिकाएँ होंगी। दुर्भाग्यवश बतूलनबाई बहुत स्वल्पायु में ही चल बसीं, पर रसूलनबाई ने बनारस का नाम रोशन किया। उनकी शैली में एक अपनी मौलिकता थी।

महफिलों में संगीत और काव्य दोनों का बड़ा मार्मिक विवेचन होता एक बार एक गायिका गालिब की एक ग़ज़ल गा रही थी :

मिलना तुम्हारा गर नहीं आसां तो सहल है,
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं।

भारतेन्दु जी के पार्श्व में एक सहृदय नवयुवक बैठे थे। वे मुग्ध होकर सिर हिला रहे थे। भारतेन्दु जी ने पूछा कि इसका मतलब भी समझा? नवयुवक ने सादर जवाब दिया, अर्थात् असम्भव। भारतेन्दु जी ने उसकी पीठ ठोंकी।

महफिल में ऐसी ही मर्मग्राहिता अपेक्षित थी। न वे लोग रह गये, न वह वातावरण।

जैसा मैं कह चुका हूँ कि उस समय के दर्शक या श्रोता भी बड़ी परिष्कृत रुचि के होते थे। संभवतः बड़ी मैना नृत्य प्रदर्शन कर रही थीं। भारतेन्दु जी भी आमन्त्रितों में थे। नृत्य देखते-देखते उन्होंने बाई जी से कहा, "इस भाव को परिवर्तित करके अमुक भाव से दिखलाइए।" बाई जी अपने समय की चोटी की नर्तकी थीं। शायद उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। पर वे अत्यन्त शालीनता के साथ बोलीं, "हुजूर इस बात को कह डालना तो आसान है पर इसे कर के दिखाना (मुद्राओं से अभिव्यक्त करना) बहुत कठिन है।" भारतेन्दु जी ने चुनौती स्वीकार कर ली। उन्होंने कहा 'उतारो घुंघरू'। यद्यपि भारतेन्दु की नृत्य शास्त्र में कोई गति न थी। पर पैरों में घुंघरू बाँधकर उन्होंने वे भाव अभिव्यक्त किये कि बाई जी ने उनके पैर पकड़ लिये।

बनारस में कुछ विशेष अवसरों पर लोग गाते-बजाते निकलते। बनारस के चारों ओर की एक परिक्रमा होती है जिसे पंचक्रोशी कहते हैं। इसमें यात्री पाँच दिनों तक प्रतिदिन पाँच कोस की यात्रा करते। इसमें भी गाते बजाते चलते। इसमें लोग प्रायः स्तुति भजन गाते। इसी प्रकार मोहल्लों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर गाने-बजाने के कार्यक्रम होते, जैसे बरसात के दिनों में कजली या कव्वाली गाते। होली के दिन तीसरे पहर कसेरे जाति के लोग होली गाते हुए चौंसट्ठी देवी का दर्शन करने जाते। उनका साथ शहनाई बजाने वाले देते। कई राम लीलाओं में स्थान-स्थान पर संगीत के कार्यक्रम होते जैसे रामघाट पर झगाजी नागर की होली गाने की परम्परा बहुत हाल तक चली आ रही थी। पर समय के उल्टे प्रभाव से उनमें से बहुतों को समाप्त कर दिया और जो बचे हैं उनके भी दिन गिने हुए हैं।



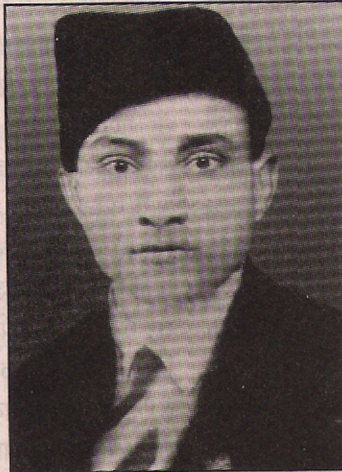


एक थे उस्ताद मौजुद्दीन खां

संकलन–विनय कूल

स्वर्गीय उस्ताद मौजुद्दीन खां भारत की उन संगीत विभूतियों में शुमार हैं जिन्होंने न केवल बनारसी ठुमरी को पूरे भारत में मान्यता दिलाई, बल्कि पूरब अंग की ठुमरी सुनने वालों के मन में बोल बनाव की ठुमरी का चाव भी पैदा किया।

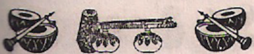
उस्ताद मौजुद्दीन खां की कर्मस्थली ताउम्र काशी ही रही, यह बात दीगर है कि उनका जन्म हिमाचल प्रदेश के नाहन नामक एक छोटी सी रियासत में सन् 1875-76 के मध्य हुआ था। आपके परिवार के ज्यादातर सदस्य संगीत में खासी दखल रखते थे। आपके वालिद उस्ताद गुलाम हुसैन खां व चाचा उस्ताद रहमत हुसैन खां मशहूर गवैये व सितारिए थे। बड़ी बहन रहमुन्नीसां बेगम भी गायिका थीं जो अन्तिम समय तक काशी में ही रहीं। आपकी माँ जेबुन्निसां भी एक कुशल गायिका थीं और उनके वालिद सुलह खां भी पंजाब के मशहूर गवैये थे। उस्ताद मौजुद्दीन खां के छोटे भाई उस्ताद रहमुद्दीन खां ठुमरी के अच्छे गायक थे जिनकी शार्गिदी नर्तक शंभू महाराज ने की थी।



उस्ताद मौजुद्दीन खॉं - पूरब अंग की ठुमरी के जन्मदाता

उस्ताद मौजुद्दीन खां की उम्र जब 4-5 साल की थी तभी उनके वालिद के बुलाने पर पूरा खानदान बनारस आ गया और यहाँ शेख सलीम फाटक पर एक किराए के मकान में रहने लगा। बाद में यह परिवार यहीं के छत्तातले स्थित एक किराये के मकान में आ गया और ताउम्र यहीं रहा। बनारस में आपकी माँ जेबुन्निसां ने अपने वालिद सुलह खां के सैकड़ों गाने युवा मौजुद्दीन खां को सिखाए। इसके अलावा आपने ग्वालियर के गणपत राय भैय्या जी से भी जो एक बेमिसाल हारमोनियम वादक व बोल बनाव की ठुमरी के उस्ताद थे, शिक्षा प्राप्त की। पटियाला घराने के आलिया फत्तू से आपने गायिकी सीखी। दरअसल काशी की संगीत परंपरा में अन्य शैलियों के साथ-साथ ठुमरी गायकी की एक विशिष्ट परंपरा भी सदियों से चली आ रही है जिसे उस्ताद मौजुद्दीन खां ने एक प्रसिद्ध गायक के रूप में अनूठी पहचान दी। आपने ठुमरी गायकी को परिष्कृत कर गाना शुरू किया जिससे श्रोताओं को भी नवीनता का एहसास हुआ। काशी में खां साहब को विख्यात करने का श्रेय सुप्रसिद्ध रईस व जमींदार श्री लल्लन व श्री छगन जी को जाता है। कलकत्ते की मशहूर गौहर ज[illegible]क उनके यहाँ आकर गा चुकी थीं। ये दोनों धनिक मुहमाँगी रकम देकर विख्यात गायकों को आमंत्रित करते थे। ऐसे रईसों के यहाँ उस्ताद मौजुद्दीन खां को आश्रय मिलने और सफल गायक जीवन की शुरूआत की घटना बड़ी रोचक है।

एक बार इन रईसों ने कबीर रोड स्थित गणेश बाग में एक बड़े संगीत जलसे का आयोजन किया था। इस जलसे की शोहरत सुनकर उस्ताद मौजुद्दीन खां अपने मित्रों सहित किसी तरह छिपते-छिपाते जलसा स्थल में प्रवेश करने में सफल हो गए। मौजुद्दीन खां एक झाड़ी के पीछे छिप गए और जब जलसा शुरू होने की तैयारी जोर-शोर से जारी थी तभी मित्रों के इशारे पर मौजुद्दीन खां धीमी आवाज में गाने लगे। संगीत पारखी लल्लन जी से यह सुरीली आवाज छुप न सकी और वे मौजुद्दीन खां के पास खिंचे चले आए। उनसे परिचय पूछा और जलसे में गाने के लिए आमंत्रित किया।



एक-दो बाहरी कलाकारों के बाद खां साहब गाने बैठे। उनके साथ संगत के लिए काशी के मशहूर साजिन्दे भी उपलब्ध थे। पहले खां साहब ने द्रुत लय का एक खयाल गाया, फिर बनारसी ठुमरी जिसके बोल थे–'हाँ री ननदिया पान खाये मुख लाल भयो, रंग चूवे जैसे केसर का।' इसके हर बोल खां साहब ने इतने उम्दा से गाए कि सारी महफिल मंत्र-मुग्ध हो गई और कब रात के दो बज गए, पता ही नहीं चला। इसी घटना के बाद से वे इस परिवार के चहेते हो गए।

इस परिवार के बाबू छगन जी की कलकत्ता के प्रसिद्ध रईस सेठ दुलीचंद से गहरी छनती थी। एक बार इन्ही सेठ ने खां साहब का गायन सुनने के लिए कलकत्ते में एक जलसे का आयोजन किया, जहाँ छगन जी खां साहब को साथ लेकर पहुँचे। वहाँ देश के सुप्रसिद्ध संगीत मनीषियों का जमघट था–गणपत राव, बशीर खां, श्याम लाल, गफूर खां, मम्मन खां, गिरजा बाबू, गौहर जान, आगरे व चिलबिला की दोनों मल्काजान वगैरह। इन सभी कलाकारों के गायन ने वहाँ जो समां बाँधा उससे सेठ जी गर्व से फूल गए।

अन्त में बारी आई उस्ताद मौजुद्दीन खां की। खां साहब ने पहले एकाध खयाल गाकर गले को ताकतवर और काबू में किया, फिर बनारस अंग की ठुमरी–'पिया परदेसिया मारो मनहारी' दर्द भरे गले से बोल बनाकर ऐसा गाया कि लोग सुनकर मदहोश हो गए। देर रात तक चले खां साहब के इस गायन से पूर्व के सारे गायकों की गायकी धुल गई और बनारस का सिर ऊँचा हो गया। मौजुद्दीन खां वहाँ से काफी यश-धन लेकर वापस लौटे। काशी के अलावा गया के सुप्रसिद्ध जमींदार श्री माधोलाल कटारिया व श्री सिजवाड़ जी जैसे रईसों के यहाँ उस्ताद मौजुद्दीन खां लम्बा प्रवास करते हुए गायन प्रस्तुत करते रहते थे। एक प्रकार से ये रईस ही आपके आश्रयदाता थे, तथापि बनारस ही आपकी मुख्य कर्मस्थली थी जहाँ आए दिन आपके पूरब अंग की ठुमरी-गायन के कार्यक्रम होते रहते थे।

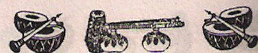
खां साहब की गायकी में मर्दानापन था। वे चक्करदार तानों की झड़ी लगा देते थे। आपका गला गमक, खनक, मुर्की, फिरत, सुरीलेपन व गंभीरता से परिपूर्ण था। आवाज को दबाने, खोलने, मुलायम या चौड़ा करने का आपका हुनर बेजोड़ था।

बिना किसी साज के भी सुर में गा लेते थे। यूँ तो ठुमरी गायन के अन्य गायक भी उस समय थे जिनमें कबीरचौरा के श्री जगदीप मिश्र विशेष उल्लेखनीय हैं। लेकिन बनारसी ठुमरी को प्रसिद्धि व विस्तार दिलाने का श्रेय उस्ताद मौजुद्दीन खां को ही जाता है। आपने ठुमरी गायन का वह युग शुरू किया जिसमें ठुमरी गाना हीनता नहीं, शान की बात समझी जाने लगी।

उस समय ठुमरी गायन में आपकी ही धाक थी। चूँकि काशी ही आपकी मुख्य कर्मस्थली थी इसलिए यहाँ उनके गायन से जुड़े अनेक रोचक संस्मरण व घटनाएं इतिहास में दर्ज हैं। 1906 के आसपास यहाँ के जौहरी बाजार में (वर्तमान में चौखंबा के नाम से ख्यात) कोठी लाल जी गोपाल दास के यहाँ श्री काशी संगीत समाज की ओर से एक जलसे का आयोजन किया गया जिसमें नगर के गणमान्यों के अतिरिक्त अनेक रजवाड़े भी जमे थे। जलसा रात्रि 10 बजे शुरू होना था लेकिन खां साहब वहाँ नहीं पहुँचे। सभी उनका इंतजार करने लगे। जब और देर हुई तो खोजबीन से पता चला कि वे विट्ठल दास जी अंधेरी वाले के, जो उस जमाने के मशहूर हारमोनियम वादक थे, घर बैठे हैं। उन्हें श्री गोवर्धन दास सोना वाले लेने पहुँचे और निवेदन किया कि पूरी महफिल आपकी प्रतीक्षा कर रही है। इस पर उस्ताद मौजुद्दीन खां ने सपाट जवाब दिया–मूड बनेगा तब आऊँगा।

खैर इसके बाद रात 12 बजे के आसपास वे अपने साजिन्दों के साथ महफिल में पहुँचे और वो गायन प्रस्तुत किया कि पूरी रात गली तक में श्रोताओं की एक भारी भीड़ खड़ी उन्हें अविचलित सुनती रही। इस ऐतिहासिक व यादगार कार्यक्रम में तबला वीरू मिश्र ने व हारमोनियम सोनी बाबू (गया वाले) ने बजाया था। ऐसे दर्जनों अविस्मरणीय वृतान्तों का स्थानाभाव के चलते यहाँ वर्णन करना सम्भव नहीं है।

खां साहब ने कभी किसी की नौकरी नहीं की। हमेशा रईसों के यहाँ मित्र की हैसियत से रहे। अपनी मस्ती



और आजादी में कभी खलल नहीं पड़ने दिया। हमेशा शानो-शौकत से रहे। शाम को अपने छत्तातले वाले मकान से निकलते तो उनके साथ प्रशंसकों की भीड़ चारों ओर से घेरे चलती।

कीमती वस्त्रों और इत्र में डूबे आप जिधर से भी निकल जाते, पूरी फिजां महक जाती। सारी कमाई अपने शौक पूरे करने में ही खर्च की, भविष्य के लिए बचाने की कोई ललक नहीं थी। आपके गानों के अनेक रिकार्ड एचएमवी ने बनाए जिनमें से कुछ आज भी श्री काशी संगीत समाज के 'धरोहर' संग्रहालय में सुरक्षित हैं।



उस्ताद मौजुद्दीन खाँ की मजार

कहा जाता है कि आगरा वाली मलिका जान से आप इकतरफा प्यार करते थे, बिना यह जाने कि वह भी उन्हें चाहती है कि नहीं। एक बार आप दृढ़ निश्चय करके इश्क और निकाह का इज़हार करने मलिकाजान के घर पहुँचे। लेकिन वहाँ उसे विख्यात गायक फैय्याज़ खां के आगोश में देखकर उन्हें ऐसा सदमा लगा कि लौटकर आपने शराब पीनी शुरू कर दी जो उनकी गायकी और जिन्दगी के खात्मे का सबब बनी।

कहा यह भी जाता है कि अपने इंतकाल से तीन महीने पूर्व आप डेरा इस्माइल में किसी नवाब के यहाँ गाने गये थे। नवाब आपका गाना सुनकर पागल सा हो गया और उन्हें अपने यहाँ दरबारी रखने का प्रस्ताव दिया जिसे खां साहब ने नकार दिया। वहाँ से लौटने के बाद आपका गला बैठ गया, आवाज बुझ गई। उनकी बड़ी बहन रहमुन्नीसा के अनुसार उस नवाब ने खीझ में खां साहब का गला खराब करने के लिये कोई घातक पेय पिला दिया था।

3 दिसंबर 1922 को ऐन दीपावली की रात जब पूरा मुल्क खुशी के चिरागों से रोशन था, संगीत को रोशन करने वाला यह चिराग महज 40-45 की कम उम्र में ही छत्तातले वाले मकान में सदा के लिए बुझ गया।

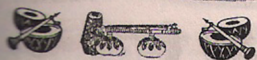
आपके इंतकाल की खबर से पूरा बनारस स्तब्ध रह गया। तीन दिनों तक यहाँ कोई गाना-बजाना नहीं हुआ। आपके पार्थिव शरीर को पितरकुंडा स्थित कब्रगाह में आपके ही वालिद की कब्र के बगल में दफनाया गया। करीबन 15 वर्ष पूर्व श्री काशी संगीत समाज ने उनकी कब्र पर एक पक्की मजार भी बनवाई थी जिस पर एक संगमरमर का शिलालेख भी लगवाया। इसका अनावरण प्रख्यात संगीतविद् ठाकुर जयदेव सिंह ने किया था।

इस अवसर पर आकाशवाणी ने आपके गायन एवं जीवनवृत्त पर विशेष प्रसारण किया था। लेकिन दुर्भाग्य से अनावरण के मात्र दो वर्षों के अन्दर वह मजार जमींदोज़ कर दी गई जिसका आज कोई नामोनिशान नहीं बचा है। आपके शिष्यों में बड़ी मोती बाई तथा पं. रामा जी शुक्ल खेड़ावाल विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपके जीवनवृत्त पर कथा लिखने एवं वृत्तचित्र बनाने के भी कई प्रयास किए गए। किन्तु दुर्भाग्य से वे पूरे न हो सके।

तथापि बनारस अंग की ठुमरी और उसकी उन्नति के लिए गिए गए उनके प्रयास एवं उनकी गायकी की रिकार्डिंग्स उस्ताद मौजुद्दीन खां की स्मृतियों को सदा अमर बनाए रखेगी।

ठुमरी गाने में उस्ताद मौजुद्दीन खाँ का जोड़ा नहीं था उ. फैयाज खाँ कहा करते थे, ठुमरी मौजुद्दीन के लिये बनी और मौजुद्दीन ठुमरी के लिये। बनारस के शिवाले के निकट प्यारे साहब की ड्योढ़ी में संगीतकारों की एक महफिल में मौजुद्दीन खाँ की गायी सोहनी की बंदिश 'फुलवा बिनत डार डार' सुनकर वहाँ उपस्थित उ. रहमत खाँ, उ. कल्लन खाँ (आगरा घराना), कु. छन्नू खाँ, बड़ी मैना, हुस्नाबाई, सुग्गन



बाई, विद्याधरी बाई, उ. जंगी खाँ, उ. बुंदू खाँ, प्रभृति संगीतकारों ने मुक्त कंठ से सराहना की। प्यारे साहब स्वयं चोटी के ठुमरी गायक थे, किन्तु वह मौजुद्दीन खाँ की ठुमरियों के दीवाने थे।

शाह आलम द्वितीय के वंशज प्यारे साहब शिवाला की कोठी में रहते थे–स्वयं गवैये थे, पर रईस होने की वजह से संरक्षक अधिक थे। इनकी ड्योढ़ी में संगीतकार बराबर जुटते थे, जिनमें आशिक अली खाँ, छन्नू खाँ, बड़ी मैना, सुग्गन बाई, उस्ताद जंगी खाँ (लखनऊ के हारमोनियम वादक) आदि थे। महफिल चल रही थी। बहुत-से लोग गा-बजा चुके थे। किसी ने कहा कि एक मौका इस छोकरे को भी दिया जाय। इजाजत मिली तो मौजुद्दीन ने पूरिया शुरू किया। कुछ ही देर में सभी मंत्रमुग्ध हो गये। यह कहाँ का छुपा रुस्तम है? किससे सीखा है? पर मौजुद्दीन खां को तो पैदाइशी हुनर था, खुदा की देन थी!

एक बार केशोदास गुजराती के यहाँ संगीत की महफिल में मौजुद्दीन खां की तारीफ हो रही थी कि सुग्गनबाई और मंगूबाई पधारीं। इन्हें देखकर मौजुद्दीन खां को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मुँह फेर लिया। उन्हें सुग्गनबाई ने अपमानित किया था, जो उनके दिल में काँटे की तरह चुभ रहा था। उन दिनों सुग्गनबाई बनारस की वरिष्ठ और सम्मानित गायिका थीं। उस महफिल में बीनकार मिठाईलाल और ख्यालगायक छन्नू खाँ उपस्थित थे। मिठाईलाल का वादन चल रहा था। फिर फरमाइश हुई कि मंगूबाई का गायन हो। मंगूबाई ने भैरवी की ठुमरी शुरू की तो मौजुद्दीन उठकर कमरे से बाहर चले गये और बाहर खड़े रहकर ध्यान से सुनते रहे। गायन समाप्त हुआ तो छन्नू खाँ ने मौजुद्दीन को बुलाया और गाने को कहा। मौजुद्दीन उस समय भाव-विभोर थे, प्रेरित थे। उन्होंने तोड़ी में ख्याल शुरू किया। गया के राजा बाबू सुग्गन और मंगू का गायन सुनने आये थे। मौजुद्दीन का गायन सुना तो आश्चर्यचकित रह गये। गद्गद् होकर उन्होंने हीरे की एक अँगूठी बतौर इनाम मौजुद्दीन को पहना दी।

भैया साहब गणपतराव जी शिवरात्रि के अवसर पर काशी पधारे। वहाँ उनके शिष्य श्यामलाल खत्री भी थे। मथुरा से चन्दन चौबे भी भैया साहब से मिलने आये। भैया साहब के शिष्य थे दरभंगा के बाबू कामाख्या प्रसाद नारायण सिंह। बाबू साहब ने राजा मुंशी माधोलाल की भूलनपुर कोठी में एक महफिल का आयोजन किया। दीवानखाना संगीतरसिकों से खचाखच भरा था। लोग राजेश्वरी और हुस्ना का गाना, चंदन चौबे का ध्रुवपद और भैया साहब का हारमोनियम सुनने के लिए आतुर थे। बनारस के धूमीमल अपने साथ मौजुद्दीन को लेकर आये। चंदन चौबे का ध्रुवपद सुनकर रसिकंजन कृतकृत्य हो गये। राजेश्वरी और हुस्ना ने अपने गायन से रसिकों का मनोरंजन किया। इसके बाद धूमीमल जी ने मौजुद्दीन खाँ को पेश किया। लोग कहने लगे यह छोकरा क्या गायेगा? पर भैया साहब ने गाने की इजाजत दे दी। नज्जू खाँ ने सारंगी सँभाली और श्यामलाल जी हारमोनियम तथा बशीर खाँ तबले पर संगति करने बैठे। हुस्ना ने ललित का ख्याल सुनाया था। मौजुद्दीन वही गाने लगे। पहले तो लोग इसे बदतमीजी समझकर नाराज हुए, पर प्रस्तुति इतनी असरदार थी कि सभी स्तब्ध रह गये। श्यामलाल और बशीर खाँ को संगत करने में कठिनाई होने लगी, तो भैया साहब ने स्वयं पेटी सँभाल ली। वह बखूबी साथ देने लगे। अंत में भैया साहब ने एक बहुत ही मुश्किल तान बजायी और कहा इसे गाओ। मौजुद्दीन ने निवेदन किया कि एक बार फिर बजाइये और ज्यों ही भैया साहब ने वह तान बजाई कि मौजुद्दीन ने उसे हू-ब-हू गले से उतार दिया। भैया साहब ने उठकर मौजुद्दीन को गले से लगा लिया। बहुत शाबाशी और दुआएँ दीं। भैया साहब ने घोषणा की कि अब इसके बाद गाना-बजाना नहीं होगा।

मुम्बई के भिंडीबाजार इलाके में स्थित उस्ताद नजीर खाँ के आवास पर आयोजित प्राइवेट महफिल में मौजुद्दीन खाँ का गाया तोड़ी का ख्याल और भैरवी की ठुमरी 'बाजूबंद खुल-खुल जाय' तथा 'दरवाजा ठाढ़ी रहियो' सुनकर वहाँ उपस्थित गाने-बजानेवालों की पूरी जमात होश गवाँ बैठी।

इसी तरह राजेश्वरी बाई के कोठे की महफिल में मौजुद्दीन खाँ ने भैरवी 'केवड़िया खोलो राजा रस की बूँद



गाकर सुनाकर लोगों पर अपनी मोहिनी गायकी का जादू डाला।

जिन लोगों ने मौजुद्दीन खाँ को सुना है, उनसे ज्ञात हुआ कि खाँ साहब जब भैरवी में बोल भरते थे, तो कयामत ढाते थे। इसके प्रमाणस्वरूप उनकी गायी भैरवी का एक रिकॉर्ड मेरे पास है। मौजुद्दीन खाँ के ग्रामोफोन रिकॉर्डों का संग्रह एच.एम.वी. के 'चेयरमैन्स च्वायस' कैसेट सिरीज में निकला है, किन्तु उसमें भैरवी की यह चीज नहीं है। तीन मिनट के इस अल्पकालीन रिकॉर्ड में बिलकुल सीधे-सादे ढंग से वह बोल कहते हैं, जो दिल में पैठ जाता है। ठुमरी गाने में सादे बोल कहकर असर पैदा करना मुश्किल होता है। वैसे तो सीधी-सादी, सरल प्रस्तुतियों से प्रभाव डालना कठिन है। बेशक, मौजुद्दीन खाँ ठुमरी के दुर्लभ गवैया थे।

तबले के बनारसी बाज के उस्ताद पण्डित कंठे महाराज के कबीरचौरा स्थित निवास पर एक संगीत-गोष्ठी में मौजुद्दीन खाँ ने कजरी 'गगन गरजे चमकत दामिनी' सुनाकर अपने सुरों की रसीली फुहार से सुनने वालों को नहला दिया।

कलकत्ते के श्यामलाल खत्री के निवास पर गौहरजान की मौजूदगी में मौजुद्दीन खाँ पूरिया-धनाश्री में 'मोरे पिया करत अभिमान मोंसे' सुनाकर श्रोताओं को सुर-सरिता में बहा ले गये। गौहरजान इस प्रस्तुति को सुनकर मौजुद्दीन की मुरीद हो गईं। प्रख्यात सारंगीनवाज बादल खाँ विशिष्ट श्रोताओं में थे। सारंगी पर इमदाद खाँ, तबले पर बशीर खाँ तथा हारमोनियम पर श्यामलाल खत्री ने मौजुद्दीन के गायन का श्रृंगार किया था। गायन समाप्त होने पर मलका और गौहरजान ने अपने कोठे पर आने की उन्हें दावत दी।

गयावाल पण्डा राजा बाबू की हवेली में आयोजित एक महफिल में जौनपुरी गाकर मौजुद्दीन खाँ ने लोगों को विमुग्ध कर दिया था। राजा बाबू ने खुश होकर खाँ साहब को हीरे की अपनी अँगूठी देकर नवाजा था। गयावाल पण्डों की रईसी और संगीत प्रेम मशहूर था।

कलकत्ते के संगीतरसिक सेठ दुलीचंद के दमदम स्थित बागीचे में महफिल सजाई गई। श्यामलाल खत्री तथा अन्य कलाकार उपस्थित थे। इस महफिल में कुछ लोगों ने शरारतन मौजुद्दीन खाँ और जगदीप मिश्र को आपस में भिड़ा दिया। सेठजी को विश्वास था कि जगदीप मिश्र बीस पड़ेंगे। गायन प्रारम्भ हुआ। जगदीप जी ने यमन में पेशकश की और मौजुद्दीन खाँ ने वसंत-बहार की अवतारणा की। जगदीप मिश्र को विजयी घोषित किया गया। भैया साहब और श्यामलाल खत्री को यह पराजय अखर गई। भैया साहब जी-जान से मौजुद्दीन खाँ का मार्गदर्शन करते रहे। बाद में दो-तीन मुकाबले हुए और हर बार मौजुद्दीन खाँ की जीत हुई। जगदीप मिश्र समझदार थे। वह समझ गये कि लोग दोनों को लड़वाकर तबाह कर देंगे। इसलिए वह कलकत्ता छोड़कर वापस बनारस चले गये।

मलकाजान के कोठे पर कलकत्ते में महफिल लगी थी। यह महफिल बनारस की सुग्गन बाई के सम्मान में आयोजित थी। उस्ताद बदल खाँ, श्यामलाल खत्री, सभी मौजूद थे। सुग्गनबाई ने ख्याल के बाद दादरा शुरू किया। दादरा गाने में सारे भारत में सुग्गनबाई का जवाब नहीं था। सभी ने दिल खोलकर तारीफ की, पर मौजुद्दीन खाँ मुँह फेरे चुपचाप बैठे रहे। इसके बाद किसी ने कहा कि अब मौजुद्दीन का गाना हो जाय। मौजुद्दीन ने वही दादरा गाया जिसे सुनकर सभी श्रोता वाह-वाह कहने लगे और मौजुद्दीन खाँ कलकत्ते में भी प्रसिद्ध हो गये।

(इन संस्मरणों का वर्णन संक्षेप में यहाँ इस उद्देश्य से किया गया है कि उ. मौजुद्दीन खां का संगीत जगत में कितना महत्वपूर्ण स्थान था। वह सर्वविदित हो जाए एवं उनके वैशिष्ट्य से नई पौध प्रेरणा लेकर संगीत की सेवा में ऐसे ही समर्पित हो।)



